

॥ श्री रामाय नमः ॥

भगवान् श्रीराम



रामचरित तथा रामनाम की महिमा



लेखक तथा प्रकाशक :

रामनन्दन प्रसाद बौरासिया (श्रीसन्तजी)

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

Eno
792

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

卐 श्री हरिः 卐

भगवान् श्रीराम



राम नाम कर अमित प्रभावा ।
वेद पुराण उपनिषद गावा ।

लेखक तथा प्रकाशक
रामनन्दन प्रसाद चौरासिया (श्रीसन्तजी)

लेखक तथा प्रकाशक :

रामनन्दन प्रसाद चौरासिया (श्री सन्तजी)

ग्राम-चौरासियानगर

पो० पचौखर, भाया-देव

जिला-औरंगाबाद (बिहार)

प्रथम संस्करण—५०० प्रतियाँ

चैत्र रामनवमी, सम्वत् २०४१ (अप्रैल, १९८४ ई०)

मूल्य—१६) रुपये मात्र

मुद्रक :—

काली चरण शुक्ल

मगध शुभंकर प्रेस, गयाधाम

पुस्तक प्राप्ति स्थान—

१ रामनन्दन प्रसाद चौरासिया (श्रीसन्तजी)

पो० मगध विश्वविद्यालय

जिला-गया (बिहार)



२ मगध शुभंकर प्रेस

रामसागर नई सड़क, गया-८२३००१

श्रीहरिः

समर्पण



अखिल लोक-ब्रह्मांडनायक

भक्तवांछाकल्पतरु, आनन्दकंद भगवान्

श्रीराम

के पावन कर कर्मलों में

सादर सभक्ति समर्पित



दासानुदास

रामनन्दन (सन्तजी)

❀ राम नाम संकीर्तन ❀

राम नाम रति राम गति, राम नाम बिस्वास ।
सुमिरत सुभ मंगल कुसल, दृढ़ुँ दिसि तुलसीदास ॥



हरे राम, हरे राम, राम राम हरे हरे ॥
हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥



श्रीराम, जय राम, जय जय राम ।

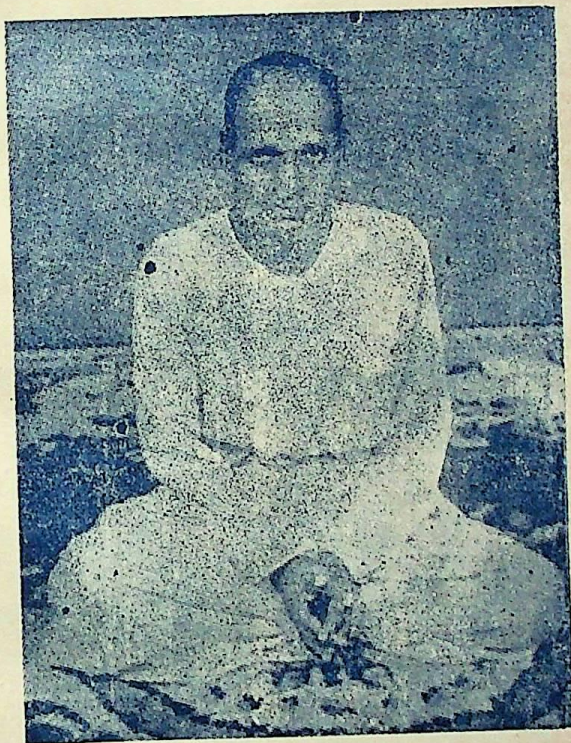


जय रघुनन्दन, जय रघुनन्दन, जय रघुनन्दन राम हरे ।
जय यदुनन्दन, जय यदुनन्दन, जय यदुनन्दन श्याम हरे ।



श्रीराम, रघुवर राम, रघुवर राम, रघुवर राघवम् ।
श्रीकृष्ण, केशव कृष्ण, केशव कृष्ण, केशव केशवम् ॥

श्रीरामाय नमः



लेखक

श्रीरामनन्दन प्रसाद चौरासिया (श्रीसन्तजी)

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations



प्रातः स्मरणीय ऋषितुल्य, पुण्यश्लोक
परम पूज्य पिताजी भगवद्ग्रामनिवासी



सतत पूज्या पुण्यश्लोका गोलोकवासिनी
माताजी

॥ श्रीरामाय नमः ॥

आत्मनिवेदन

प्रत्येक पुस्तक-प्रणेता को आधुनिक परम्परा के अनुसार 'आत्मनिवेदन' लिखना कर्तव्य समझा जाता है। 'भगवान् श्रीराम' पुस्तक में भगवान् के नाम, रूप, गुण पर भगवत्कृपा से कुछ प्रकाश डाला गया है। इसके पठन-पाठन, मनन तथा जीवन में अपनाने से निश्चय ही कल्याण होगा। भगवान् में अनन्त गुण हैं, लेकिन इस पुस्तक में जो थोड़े से ही गुणों की चर्चा की गई है, उन्हीं थोड़े से गुणों को अपने जीवन तथा चरित्र में उतारकर कोई भी मनुष्य अपने को धन्य बना सकता है।

भगवान् के नाम और रूप में अभिन्न सम्बन्ध है। जिस प्रकार भगवान् के नाम में उनके सारे गुण और शक्तियों का वर्णन रहता है, उसी प्रकार भगवान् के रूप में भी सारे गुण और सारी उनकी शक्तियों की चर्चा रहती है। भगवान् के रूप के अन्तर्गत ही उनका शील, स्वभाव तथा सारे गुण भी निहित हैं।

वाल्मीकि रामायण चरित्र प्रधान है और श्रीरामचरित मानस भक्ति प्रधान है, लेकिन चरित्र और भक्ति में सचमुच अभिन्न सम्बन्ध है। चरित्र और भक्ति का सम्बन्ध वैसा ही है जैसा सम्बन्ध फूल और गंध का, अग्नि और दाहकता का तथा सूर्य और प्रकाश का है। हाँ, यह अनुभूत सत्य है कि चारित्रिक शील भगवद्भक्ति से अनायास ही आ जाते हैं।

अतः जो भक्ति का अनुष्ठान करते हैं, वे निश्चय ही शीलवान् तथा चरित्रवान् होते हैं।

भगवान् श्रीराम के गुणों के बखान में उनकी शरणागत-वत्सलता का गुण सबसे अनूठा कहा गया है। सारे आकर ग्रन्थों तथा भक्तिशास्त्रों में शरणागति भक्ति की विशेषता मुझे सर्वत्र दीखती है चाहे वाल्मीकि रामायण हो या श्रीरामचरित मानस हो या श्रीमद्भगवद्गीता हो या श्रीमद्भागवत महापुराण हो। शरणागति की भावना सभी महापुरुषों में देखी जाती है। चाहे वे शंकराचार्य हों, या रामानुजाचार्य हों या निम्बार्काचार्य हों या श्रीगैरांग महाप्रभु हों।

भगवान् ने स्वयं भी शरणागति की महिमा सबसे अधिक गावी है। वाल्मीकि रामायण युद्धकांड १८।३३ में भगवान् श्रीराम कहते हैं :—

‘मकुदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।

अभयं सर्वभूतेभ्यो ददामि एतद्व्रतं मम ॥’

अर्थात् एक बार भी जो मेरी शरण में आकर यह कहता है कि ‘हे भगवन् ! मैं आपकी शरण हूँ, आपका दास हूँ’ तो मैं सदा के लिए उसे अभय बना देता हूँ, यह मेरा जीवन व्रत है।’ इस प्रकार जो किसी भी भाव से भगवान् की शरण जाता है, उसे भगवान् अपना लेते हैं।

गीता के सारे उपदेशों का सार भगवान् की शरणागति है। भगवान् गीता ७।१५ में गम्भीरतापूर्वक तथा चेतावनीपूर्ण शब्दों में कहते हैं :—

“न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः ।

माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ॥”

अर्थात्, 'जो मेरी शरण में नहीं आते, वे पापी हैं, मूढ़ हैं, नराधम हैं, आनुरभाव सम्पन्न हैं तथा उनके ज्ञान को माया ने हर लिया है।' इस प्रकार शरण में आने के लिए भगवान् कितना कठोर वचन बोलते हैं, यह मनन करने योग्य है। हाँ, भगवान् ने भी सभी साधनों में शरणागति भाव की साधना को सर्वोपरि घोषित किया है।

अरे मन ! तू भगवान् की शरण जा तथा निरन्तर उनका नाम स्मरण कर। यही मानव जीवन का लाभ है।

मैं परम पूज्य स्वर्गीय माता-पिता के पावन चरणकमलों में पुनः पुनः नमन करता हूँ। उन्होंने ही मुझे शरणागति भगति का गूढ़ रहस्य समझाया। वे मेरे लिए भगवद्रूप हैं। माता पिता सन्तान के लिए भगवद्रूप ही हैं। माता-पिता के दिव्य रूप का स्मरण सबको बार-बार पढ़ना चाहिए तथा उन्हें भगवद् रूप में निरन्तर देखने की चेष्टा करनी चाहिए।

मगध विश्वविद्यालय बोधगया के परम पूज्य गुरुजन डॉ० सत्यनारायण चौधरी, डॉ० पूर्णमासी राय, डॉ० उपेन्द्र ठाकुर, डॉ० श्याम विहारी सिंह तथा डॉ० विष्णु नारायण मेहरोत्रा का सदा अत्यन्त कृतज्ञ हूँ जिनसे निरन्तर स्नेह मिलता रहा है।

श्री देवेन्द्र नाथ ठाकुर तथा श्रीश्यामाकान्त झा आदि ने मुझे निरन्तर उत्साह दिलाया है, अतः उन्हें कभी नहीं भूल सहाता हूँ।

गया के परम पूज्य श्री गंगाधर डालमिया तथा श्री विश्वनाथ डालमिया जी का भी सदैव अनुगृहीत हूँ। पूज्य

श्री आदित्य सहाय, श्री श्यामनन्दन प्रसाद (वकील), श्री काली प्रसाद सेठ और श्री गिरिधारी लाल पोद्दारजी का भी सदा आभार मानना हूँ। पूज्या श्यामा माताजी, राधा माताजी (नई गुदाम) तथा रजनी बहनजी के अकृत्रिम स्नेह तथा सत्परामर्श का जो अकुण्ठित प्रसाद मुझे मिलता रहा है, मैं उससे कदापि उक्तृण नहीं हो सकता हूँ। मगध शुभंकर प्रेस, गया के स्वत्वाधिकारी पूज्य श्री काली चरण शुक्लजी और उनके सुयोग्य पुत्र श्री उमेश चन्द्र शुक्लजी (एडवोकेट) का सदा आभारी हूँ जिन्होंने इस पुस्तक के प्रकाशन में पूर्ण तत्परता तथा दक्षता दिखाई है।

सदाचार-निधि, धर्मशील तथा विपुल गुण-धाम अनुज आयुष्मान् श्रीश्यामनन्दन प्रसाद चौरासिया को भूयोभूयः धन्यवाद देते हुए अघाता नहीं हूँ जिनसे पुस्तक प्रणयन में दिव्य प्रेरणाएँ उपलब्ध होती रही हैं। श्रद्धा तथा विनम्रता के सुन्दर भावों से युक्त श्री शम्भु नारायण चौरासिया (गुमला) को सदा शुभाशीर्वाद देता हूँ जिनमें उत्कट सेवा भाव छलकता रहता है।

अपनी धर्मपत्नी आयुष्मती सुधा रानीजी चौरासिया को बार-बार हार्दिक साधुवाद देता हूँ जिन्होंने मुझे सच्ची कर्तव्य-चेतना प्रदान की है।

चिरजीवी सुमनलता, प्रदीप, जीतु, मोतु, नीलम, पुनम, सुमन, राधा, मुन्नी बेबी, रूपा, ज्योति, राजाकशोर, पवन, सन्तोष, हारओम् आदि सभी छोटी-छोटी के लिए मंगल कामना करता हूँ। अपने सुसेवक विन्देश्वरी माली तथा हरिलाल के लिए भी शुभ कामना करता हूँ।

प्रस्तुत पुस्तक के निर्माण में मैंने जिन ग्रन्थों तथा पत्रिकाओं से सहायता ली है, उनका उल्लेख अन्त में पाठकों की सुविधा के लिए कर दिया है। मैं भाषा-शैली का न विद्वान् हूँ, न हिन्दी साहित्य का समुचित ज्ञान है और न भजन निरन्तर करने वाला अनन्य भक्त हूँ, अतः जो साहित्यिक त्रुटियाँ हों तथा धर्म शास्त्रों के विरुद्ध यदि कोई अनुचित बात कही गई हो तो मुझे अज्ञ, मूर्ख समझकर क्षमा करने की कृपा करें। सुधी पाठकों से क्षमा माँगना ही मेरा कर्तव्य है।

अन्त में मैं पुनः उस परम कारुणिक परमेश्वर की अहैतुकी कृपा के प्रति सादर-सभक्ति शीश श्रुकाता हूँ जिनकी कृपा से सारे जगत् का कार्य सम्पन्न होता है।

हृदय खोलकर अपने सभी भाइयों को यह बता देना चाहता हूँ कि भगवान् के नाम में सारी शक्ति मौजूद है। भगवान् के नाम की बात कौन कहे? उनके नामाभास में ही जब अपार शक्ति है और पूर्ण कल्याण करने की शक्ति है तो नाम की महिमा का क्या कहना है? शिवपुराण में लिखा है :—

‘नामाभासेनापि तोषं दधाने
कारुण्याब्धौ विश्वनिस्तारनाम्नि।’

करुणावरुणालय भगवान् नामाभास से ही सन्तुष्ट हो जाते हैं और जीव का कल्याण कर देते हैं। उनका नाम इतना उदार है कि वह पापियों का भी उद्धार करने में देर नहीं करता। नाम महाराज जैसा पतित पावन कोई नहीं। अतः नामकीर्तन द्वारा सबका मंगल हो। भगवान् श्रीराम

की तरह सब शीलवान् वनें और राम नाम अधिक से अधिक लेने की चेष्टा करें ।

‘श्रीराम जय राम जय जय राम’ की दिव्य ध्वनि सर्वत्र सर्वदा हो, यही मैं चाहता हूँ ।

मगध विश्वविद्यालय,
बोधगया
चैत्र रामनवमी, संवत् २०४१
१० अप्रिल, १९८४

विनीत
दासानुदास रामनन्दन
(सन्तजी)

॥ श्रीहरिः ॥

माता-पिता के दिव्य रूप का स्मरण



जीवमात्र का केवल स्थूल रूप ही नहीं है, बल्कि सूक्ष्म दिव्य रूप भी होता है । जीव का शरीर स्थूल रूप है, लेकिन उसका अविनाशी आत्म रूप दिव्य होता है । जब तक शरीर रहता है तब तक स्थूल रूप का दर्शन होता है, लेकिन सूक्ष्म दिव्य दृष्टि वाले सन्त, ऋषि तथा महापुरुष उस समय भी जीव के दिव्य रूप को ही देखते हैं । परमेश्वर का दिव्य रूप

है। उनका भजन करना, उनकी गुणगान करना, उनकी चर्चा करना, उनका गुण श्रवण करना तथा श्रीमद्भागवत, श्रीरामचरितमानस तथा श्रीमद्भगवद्गीता आदि दिव्य ग्रन्थों का स्वाध्याय करना दिव्य क्रियाएँ हैं। ऐसी दिव्य क्रियाओं से कोई भी प्राणी दिव्य रूप को धारण कर लेता है। संसार को भगवान् का रूप समझकर या जीवमात्र में भगवद्रूप देखते हुए सेवा करना भी दिव्य क्रिया है। सारे ऋषि, महर्षि अपनी दिव्य क्रियाओं से दिव्य बनते हैं।

मेरे मात-पिता का पार्थिव रूप अब नहीं है। लेकिन उनका दिव्य रूप अभी भी है और सदा शाश्वत रूप से रहेगा ही। उनका नाशवान शरीर ही नष्ट हुआ है, लेकिन उनकी दिव्यात्मा सदा वर्तमान है। आत्मा न मरती है, न आती है, न जाती है। बल्कि सदा एक रूप में रहती है और भगवत्प्रेम द्वारा भगवान् में विलीन हो जाती है। भगवान् को आत्माराम भी कहा जाता है। आत्मज्ञान के समान जीव को पवित्र करनेवाला कुछ भी नहीं है।

मैं यहाँ अपने माता-पिता के लौकिक रूप का वर्णन नहीं कर रहा हूँ बल्कि उनके दिव्य रूप की झाँकी प्रस्तुत कर रहा हूँ जिससे मानवमात्र को दिव्य सन्देश की प्राप्ति हो। मेरे माता-पिता अपनी दिव्य क्रियाओं से दिव्य रूप को प्राप्त कर लिए। उनके दिव्य गुणों एवं दिव्य क्रियाओं का स्मरण करना भी मेरा कार्य है। भगवद्भक्ति के कारण मेरे माता-पिता का तन, मन, बुद्धि सब कुछ दिव्य था।

माता-पिता का स्वरूप ही दिव्य है। उनके दिव्य रूप का वर्णन सारे धर्मशास्त्रों में है। प्रत्येक पुत्र को अपने माता-पिता में देव भावना होनी चाहिए। देव भावना से उन्हें

माता-पिता के दिव्य रूप का स्मरण [१५

नित्य प्रातः प्रणाम करना चाहिए और देव भावना से ही उनकी सदा सेवा करनी चाहिए। अपने माता-पिता के दिव्य रूप की स्मृति मेरे मन में हर क्षण बनी रहती है। समस्त धर्मशास्त्रों में माता-पिता के दिव्य रूप की चर्चा मिलती है और उनके प्रति पूज्य भाव, सेवाभाव रखना प्रत्येक पुत्र का परम पुनीत कर्तव्य ही होता है। पद्मपुराण सृष्टि खण्ड ४७।७-१६ में लिखा है :—

‘माता-पिता की पूजा के समान कोई यज्ञ नहीं है। माता-पिता को देव रूप में देखते हुए नित्य प्रातः प्रणाम करने से अक्षय्य स्वर्ग मिलता है। जो पुत्र माता-पिता के चरणों को धोकर जल पीता है, उसके करोड़ों जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं। माता सर्वतीर्थमयी है और पिता सम्पूर्ण देव रूप हैं। संसार में वही सबसे बड़ा पुण्यात्मा और महात्मा है जो माता-पिता के दिव्य रूप को समझते हुए उनके प्रति पूज्य-भाव रखता है उनकी सेवा करता है उनको आज्ञा का पालन करता है एवं उन्हें प्रसन्न करने की निरन्तर चेष्टा करता है। माता-पिता को प्रसन्न करना सभी देवताओं तथा भगवान् को प्रसन्न करना है। माता-पिता में परमात्मा का दर्शन करना चाहिए। सचमुच में अपने माता-पिता क प्रति पूज्य भाव न रखना महान् अज्ञान है और यह परमात्मा का ही तिरस्कार है।

‘मातृ देवो भव, पितृ देवो भव’ की विशद पवित्र चर्चा वृ० आरण्यक उप निषद् आदि अनेक धर्मग्रन्थों में भरी पड़ी है। महात्मा श्रीभीष्मपितामह की मातृपितृ-भक्ति परम प्रकाशमय है। अनन्त श्री स्वामी अखण्डानन्दजी सरस्वती की पुस्तक ‘श्रीभीष्मपितामह’ श्रीभीष्मपितामह की अनोखी

मातृपितृभक्ति पर अद्भुत प्रकाश डालती है। धर्मात्मा शान्तनु के पुत्र भीष्मने पितृभक्ति को प्रतिष्ठित करने के लिए ही आजन्म अविवाहित रहने की प्रतिज्ञा की। निश्चय ही यह उच्चतम आदर्श सदा से मान्य ही नहीं, बल्कि पूज्यतम भी है। वास्तव में भीष्मने पितृदेवता के प्रति जो पूज्य तथा दिव्य भाव दिखलाया है वह चिरस्मरणीय और अनुकरणीय है। भीष्मने अपनी माता सत्यवतीजी को भी अपूर्व सेवा की। अपनी माता की भीषण आज्ञा का भी उन्होंने पालन किया। अपनी माता की आज्ञा के अनुसार उन्होंने विचित्र-वीर्य की शादी करवायी। इसका विस्तृत उल्लेख 'महाभारत' में देखा जा सकता है।

माता-पिता की सेवा करना दिव्य क्रिया है। दिव्यपुरुष श्रवणकुमार की मातृपितृभक्ति बार-बार पढ़ने योग्य है। माता-पिता की सेवा की अनन्त महिमा है। श्रवण के माता-पिता अन्धे थे। वे स्वयं तीर्थ स्थानों में नहीं जा सकते थे। उनकी इच्छा तीर्थों के सेवन करने की हुई। धर्मात्मा श्रवण कुमार ने अपने माता-पिता को अपने कंधे पर बिठाकर तीर्थ सेवन कराया। अपने माता-पिता की सेवा करने में बड़े-बड़े कष्टों को सहना स्वीकार किया। धन्य है उसकी मातृपितृ-भक्ति।

'मातृदेवो भव, पितृदेवो भव' आदि उपनिषद् वाक्यों का उल्लेख 'वाल्मीकि रामायण' में अनन्त रूपों में है। भगवत् चरित का उद्देश्य लोकशिक्षा देना होता है। यह सच है कि भगवान् ने लोक में माता-पिता की भक्ति करने की शिक्षा देने के लिए ही मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम के रूप में अवतार धारण किया। भगवान् श्रीराम की प्रत्येक क्रिया

धर्म की व्याख्या के रूप में है। वे अपने माता-पिता को प्रतिदिन प्रातःकाल प्रणाम करते थे और उनकी प्रत्येक आज्ञा का पालन करते थे। अपने पिता की आज्ञा से उन्होंने चौदह वर्ष तक वन में रहकर कष्ट किया। इसकी चर्चा भिन्न-भिन्न पुराणों में तथा रामायणों में विस्तार रूप से की गई है। श्रीमद्भागवत ११।१।३४ में नवें योगीश्वर करभाजनजी कहते हैं :—

‘अपने पिता दशरथजी की आज्ञा से देवताओं के लिए भी वाञ्छनीय और दुस्त्यज राज्यलक्ष्मी को छोड़कर भगवान् श्रीराम वन-वन घूमते फिरे।’ भगवान् का सारा चरित और लीला मनुष्यमात्र को शिक्षा देने के लिए है। ‘रामस्तवराज’ पुस्तक में भगवान् श्रीराम की मातृ-पितृभक्ति का वर्णन अत्यन्त सुन्दर है। वाल्मीकि रामायण में भी भगवान् श्रीराम की मातृपितृ-भक्ति का उल्लेख सरस रूप में किया गया है। महर्षि वाल्मीकि ने श्रीराम का अधिकांश वर्णन मर्यादा-पुरुषोत्तम के रूप में किया है। वाल्मीकि रामायण ६।११७।३१ में महर्षि वाल्मीकिने स्पष्ट रूप से कहा है—‘हे श्रीराम ! अप पुराण पुरुषोत्तम त्वे । आपने लोक-शिक्षा के लिए ही अवतार ग्रहण किया है।’

स्वामी विवेकानन्दजीने श्रीराम के ‘मर्यादापुरुषोत्तम’ विशेषण पर अपना दृष्टिकोण व्यक्त करते हुए कहा है :—

‘मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम का प्रादुर्भाव अन्य सभी अवतारों की अपेक्षा विशेष महत्त्व रखता है। उन्हें सभी आदर्शों का खजाना कहा जाए तो अत्युक्ति नहीं होगी। वे मानव-जगत् के परमादर्श हैं। वे मानवता के दिव्य केन्द्र

हैं। उनकी मातृ-पितृभक्ति लोगों को शिक्षा देने के लिए है। वे सारे दिव्य गुणों के धाम हैं।'

'तत्त्वार्थ रामायण' में श्रीडोंगरेजी महाराज कहते हैं कि 'मातृपितृभक्ति मर्यादापूर्ण चरित्र के अन्तर्गत है। मर्यादापूर्ण चरित्र अपनाने से ही हृदय का रावण मरता है।' अतः माता-पिता के प्रति पूज्यभाव रखना दिव्य भाव है।

मेरे मात-पिता पुण्यश्लोक अनसूया और ऋषि अत्रि की तरह धर्मज्ञ थे। मुझे परमेश्वर की भक्ति की दिव्य प्रकाश किरणें उन्हीं से प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मेरे हृदय में प्रभु-प्रेम का बीज वपन करने का पूर्ण श्रेय उन्हीं का है। यह ध्रुव सत्य है कि बालकों के प्रथम गुरु, आचार्य माता-पिता हैं। माता-पिता का जैसा स्वभाव और संस्कार होता है, वंसा ही बच्चे का प्रायः होता है। भगवद्भक्ति का संस्कार मुझमें अपने मात-पिता से आए हैं।

मनुष्य की आध्यात्मिक प्रगति अपनी व्यक्तिगत साधना से होती है। किसी भी नाम और रूप से परमेश्वर का स्मरण तथा ध्यान किया जा सकता है। मेरी माँ सभी भगवन्नामों का समान महत्त्व बताती हुई रामनाम की विशेष चर्चा करती थी। वह सुबह शाम प्रतिदिन रामनाम जप करती थी। वह नित्य चार बजे भोर में जगकर चार बजे से छः बजे तक घर के एकान्त स्थान में बैठकर रामनाम जप बड़े प्रेम से करती थी। रात्रि में वह एक घंटा नामजप करने के बाद सोती थी। यह मेरी माँ की दिव्य क्रिया थी। वह सन्त-स्वभाव के सारे दिव्य गुणों से विभूषित थी। उसके जीवन का अन्त समय अवश्य ही दिव्य था। जिसके जीवन के

प्रारंभ और मध्य में भगवत्स्मरण की दिव्य क्रिया होती है, उसका अन्त भी अवश्य दिव्य होना है, यह दिव्य प्रमाण दिव्य ग्रन्थ श्रीमद्भगवद्गीता में देखा जा सकता है। यदि शारीरिक क्रिया दिव्य होती है तो मन भी दिव्य बन जाता है।

हाँ, रामनाम जप और स्मरण से मानव जीवन दिव्य, पवित्र और धन्य बन जाता है। सन् १९८० का मई महीना था। यह भगवत्कृपा कही जा सकती है कि १६ मई, १९८० से २० मई, १९८० तक लगातार कोई-न-कोई सन्त, महात्मा मेरे मगध विश्वविद्यालय बोधगया प्रांगण में स्थित निवास-स्थान पर आते रहे। सन्त-महात्माओं के प्रति मेरी माँ में अत्यन्त दिव्य श्रद्धा के भाव रहते थे। वह महात्माओं की खूब सेवा करती और उनसे भगवत्कथा सुनती। यह मेरी माँ का दिव्य स्वरूप ही कहा जा सकता है।

सन् १९८० ई के मई महीने की २० तारीख थी। दिन के १० बज रहे थे। नाम कीर्तन मेरी कुटिया में चल रहा था। मेरी माँ बड़े प्रेम से कीर्तन सुन रही थी। इसी बीच मेरी माँ के लिए भगवान् का विमान आया। चपचाप मेरी माँ भगवान् के विमान पर सवार होकर भगवान् के धाम में पहुँच गई। यह दिव्य दृश्य की बात कोई दिव्य पुरुष ही समझ सकता है।

अब मेरी माँ का पार्थिव शरीर शव के रूप में रह गया जिसे विष्णु धाम गया ले जाने के लिए मगध विश्वविद्यालय की ट्रक आयी। रामनाम लेकर शव ट्रक पर रखा गया। ट्रक पर मगध विश्वविद्यालय प्रांगण के बहुत लोग बैठ गए और सब लोग रामनाम का कीर्तन करने लगे। कीर्तन की

क्रिया दिव्य होती है और इसमें अद्भुत दिव्य रस होता है। कीर्त्तन के कारण शव-यात्रा दिव्य थी। भगवान् दिव्य हैं और उनकी सभी क्रियाएँ दिव्य हैं। दिव्य क्रिया से वातावरण भी दिव्य बन जाता है। शव-यात्रा मगध विश्वविद्यालय प्रांगण से विष्णुधाम गया पहुँची। रात्रि के सात बज रहे थे। दाह-संस्कार के सभी सामान खरीदे गए। ग्यारह मन लकड़ी खरीदी गई जिसमें चन्दन की लकड़ी भी थी। शव जलते समय हमलोग भगवान् का नाम ले रहे थे और क्षणभंगुर मानव जीवन पर विचार चल रहा था। जीव के संकल्पों का अन्त नहीं है। वह क्षण-क्षण संकल्प करता रहता है लेकिन वह भगवान् की याद नहीं करता है जो मानव जीवन के लिए अद्भुत अमृत है। यदि जीवन में भगवान् का स्मरण नहीं होता है तो जीवन का कुछ भी मूल्य नहीं है। धर्म का वास्तविक मार्ग भगवान् की सर्वश्रेष्ठता स्वीकार करना है। भगवत्स्मरण ही शाश्वत धन है।

रात्रि के दस बज गए। नाशवान शव अग्नि में जलकर राख हो गया। अपने अविनाशी आत्म-स्वरूप तथा नाशवान शरीर का बोध हर मनुष्य को होना चाहिए। माँ का दिव्य रूप तथा उनकी दिव्य क्रिया का स्मरण मुझे अभी भी है और सदा रहेगा।

मेरे पिताजी एक दैवी विभूति थे। उनकी दिनचर्या दिव्य थी। वे सन् १९७८ ई० के जुलाई महीने से गाँव छोड़ कर मेरे साथ मगध विश्वविद्यालय प्रांगण बोधगया में रहे। वे शास्त्र के तत्त्व को भली भाँति जानते थे। उनकी सारी क्रियाएँ दिव्य थीं। वे भगवन्नाम-साधन-पथ को सार्वभौम पथ कहते थे। वे मुझे सदा यही बताते थे कि भगवान् के

अनन्त नाम और अनन्त रूप हैं और सब जीव के कल्याण के लिए हैं। कोई एक आदमी अनन्त नाम नहीं ले सकता है और अनन्त रूप का ध्यान नहीं कर सकता है, अतः एक नाम और एक रूप में निष्ठा कर लेनी चाहिए। रामनाम का वे स्वयं जप करते थे और उन्होंने ही मुझे रामनाम का जप तथा कीर्तन करने के लिए सिखलाया। वे हमेशा कहते थे कि रामनामजप और कीर्तन से चरित्र का निर्माण स्वयं हो जाता है। यदि किसी बालक को रामनाम लेने के लिए बताया जाय और वह राम नाम लेने का अभ्यास करे तो वह निश्चय ही चरित्रवान् और सम्पूर्ण गुणों से विभूषित होगा।

सुबह और शाम नियमपूर्वक राम का नाम जप करने के बाद मेरे पिताजी श्रीमद्भागवत तथा श्रीरामचरितमानस डेढ़ घंटे तक अवश्य पढ़ते। वे तीन बजे भोर में ही जग जाते थे और उसी समय से वे भगवान् का नाम लेते रहते थे। इसके बाद रामचरितमानस आठ बजे दिन तक वे पढ़ते थे। इसके बाद वे स्नान करते और पुनः श्रीमद्भागवत पढ़ते थे। श्रीमद्भागवत पढ़ते-पढ़ते दस बजे दिन हो जाता। तत्पश्चात् प्रभु स्मरण करते हुए भोजन करते। भोजन करने के बाद थोड़ी देर तक वे विश्राम करते। विश्राम करने के बाद पुनः वे श्रीमद्भागवत तथा रामचरित मानस पढ़ते। इन दिव्य ग्रन्थों के पढ़ने के बाद वे लोगों को भगवान् श्रीराम, श्रीकृष्ण का परम मंगलमय चरित सुनाते। उनके मन-मन्दिर में भगवान् सदा उपस्थित रहते थे। हर क्षण, हर पल उससे भगवत्कार्य ही होता। यदि कोई मनुष्य दिव्य ग्रन्थों का स्वाध्याय करता रहे और प्रभु का स्मरण, चिन्तन करता रहे

तो उसकी बुद्धि विनश्वर हो जायगी। दिव्य क्रियाओं को करने की जरूरत है। दिव्य क्रिया का फल दिव्य ही होता है। दिव्य क्रिया निरन्तर करते रहने से मेरे पिताजी दिव्य देव रूप हो गए।

मेरे पिताजी में भगवान् के प्रति अखण्ड विश्वास था। विश्वास के बिना भगवान् की भक्ति नहीं होती। तुलसीदासजीने भी लिखा है :—‘बिनु विश्वास भक्ति नहीं, तेहि बिनु द्रवई न राम।’

मेरे पिताजी के जीवन में क्षमा, सरलता और वात्सल्य स्नेह पूर्ण रूप से फूट पड़ते थे। उनमें किसी के प्रति दोषदृष्टि नहीं थी। वे मुझ सदाचार, शिष्टाचार तथा भगवद्भजन का निरन्तर उपदेश देते रहते थे। सबके प्रति उनमें सद्भावना रहती थी। उनके दिव्य शरीर से यज्ञमय कर्म होते रहते थे। वे प्रत्येक रविवार को विश्वविद्यालय प्रांगण से पैदल ही बोधगया के मन्दिरों में जाते थे। वे सर्वत्र भगवान् का दर्शन करते थे। उनकी निष्ठा एक भगवान् में थी। मन्दिर की मूर्तियों में भगवान् को देखते हुए वे उन पर पुष्प चढ़ाते और उनकी प्रसन्नता के लिए धूप, अगरबत्ती श्रद्धापूर्वक जलाते। मन्दिरों के अतिरिक्त वे दीन, गरीबों और भीखमंगों में नारायण का दर्शन करते थे। वे उन्हें खाने के लिए रोटी देते, पैसे देते और अपने हृदय का अद्भुत प्रेम देते। अपने परिवारों से भी अधिक उन्हें वे मानते थे। उनका दुःख वे पूछते रहते और उनकी हर तरह से सेवा करने के लिए तैयार रहते थे।

पिताजी के श्रीमुख से निरन्तर भगवद्गुणगान की स्त्रोतश्रवणी निःसृत होती। उनके हृदय में भगवद्भक्ति सदा

सदा लहराती रहती थी। वे विलक्षण दिव्य पुरुष थे। उनमें सारे दैवी गुण दीखते थे। उन्हें श्रीरामचरितमानस की अधिकांश चौपाइयाँ कंठस्थ हो गई थीं। मानस की स्तुतियाँ वे बड़े प्रेम से गाते थे। उनके हृदय में आत्म प्रकाश था।

दिन रविवार था। सन् १९८ ई० के मार्च महीने की ४ तारीख थी। छ बजे सुबह थी। हल्की ठंड थी। धीमी-धीमी सुगन्धमयी हवा चल रही थी। मैं भगवान् के स्मरण में था। संसार को भूल चूका था। भगवान् के ध्यान में डब गया था। मेरे कमरे की किवाड़ बन्द थी। दूसरी ओर मेरे पिताजी बाहर बैठकर भगवान् का भजन कर रहे थे। भजन करते-करते वे मौन हो गए। हरिलाल ने मेरे कमरे की किवाड़ में ठक्-ठक् शुरू की। मैंने पूछा—‘क्या बात है?’ उसने कहा—‘बाबा को देखिए वे विल्कुल मौन हो गए हैं।’ मैंने देखा—‘पिताजी पूर्ण मौन हैं। वे कुछ भी नहीं बोल रहे हैं।’ उन्हें मगध विश्वविद्यालय प्राणन बोधगया से अशोक नगर गया में स्थित अपने मकान पर ले आया। मैं भी उनके साथ गया रहने लगा। भगवान् का सारा विधान मंगलमय होता है। वे जो कुछ करते हैं, अच्छा ही करते हैं। भक्तों के साथ उनकी लीला अद्भुत होती है। सांसारिक प्राणी भगवान् के बारे में कुछ भी नहीं सोचते हैं। उनका मन, बुद्धि, विचार सब कुछ अदिव्य होता है। वे घोर अज्ञान से ग्रसित रहते हैं। अतः उनका विचार गलत होता है।

मंगलवार दिन था। १९८४ ई० के मार्च महीने की छ तारीख थी। मेरे मन में ऐसा विचार आया कि अब मेरे पिताजी का नाशवान् शरीर उनकी दिव्यात्मा से अलग होने

वाला है। शरीर और आत्मा दो भिन्न वस्तुएँ हैं। इनका दिव्य ज्ञान हो जाने पर शोक, मोह किसी को नहीं होता है। मेरे पिताजी की दिव्यात्मा शीघ्र ही परमात्मा में मिलने वाली है, अतः उन दिव्यात्मा के लिए अन्त में भी दिव्य क्रिया होनी चाहिए। इसी विचार से मैंने पिताजी के कमरे में तीन घण्टे तक पूजा की। इसके बाद मैंने पूज्य पिताजी को गीता, रामायण और विष्णुसहस्रनाम सुनाया। इन दिव्य क्रियाओं को करते-करते रात्रि के दस बज गए। अब मैं पिताजी के समीप सो गया। चार बजे भोर में मेरी नींद खुली। अब दिन बुधवार और सन् १९८४ ई० का सात मार्च आ गया। मुझे ऐसा लगा कि मेरे पिताजीने मुझे श्रीमद्भगवद्गीता सुनाने के लिए कहा। पिता की इच्छा पूरी करना प्रत्येक पुत्र का महान् धर्म है। पितृभक्ति के कारण श्रवण, भीष्म आदि अमर हैं जिनकी अमर कहानी धर्म के इतिहासों में भरी पड़ी है। मैं पिताजी को श्रीमद्भगवद्गीता सुनाने लगा। गीता का दूसरा अध्याय सुनकर मेरे पिताजीने अपनी आँखें मूँद लीं मानो वे भगवान् की ज्योति में लीन हो गए। उनके जैसा भाग्यवान् कौन होगा? लौकिक दृष्टि से उनके चरित्र में सारे मानवीय गुण भरे हुए थे और पारलौकिक दृष्टि से उनमें अविरल विशुद्ध भक्ति प्रकाशित होती थी। उनकी भाँति प्रत्येक प्राणी भगवद्धाम पहुँचें, यही मंगल कामना परमेश्वर से करता हूँ लेकिन भगवद्धाम जाने के लिए जीवन के प्रारंभ से ही भजन, कीर्तन, स्मरण आदि दिव्य क्रिया करनी पड़ती है।

अब मेरे पिताजी का शरीर अलग निष्प्राण दीखने लगा। शरीर के रहने की एक सीमित अवधि होती है।

भगवद्भजन से वह भी दिव्य बनता है। मेरे पिताजी का शरीर अवश्य दिव्य था। उनके शरीर की अवस्था नब्बे वर्ष की हो रही थी। उनके प्रति लोगों में बड़ी श्रद्धा थी। उन्हें जीवन में खूब आदर मिला था। अब उनके दिव्य शव पर लोग श्रद्धा के फूल चढ़ाने लगे। बहुत से लोग भक्ति भावना से उन्हें फूल की माला पहिनाते लगे। फूल, माला से उनके शव की शोभा अद्भुत दीख रही थी। सबके हृदय में उनके प्रति दिव्य मधुर पवित्र भावनाएँ उमड़ रही थीं। उनके पवित्र शव के निकट धूप, गुँगुल जल रहा था जो वातावरण को सुगन्धमय बना रहा था। बाजेवाले उस शुभ अवसर पर पहुँच गए। वे खुशी से बाजे बजा रहे थे। अन्य लोग मंगलमय रामनाम ले रहे थे। उस समय मंगलमय वातावरण प्रतीत होता था। दिव्यात्मा का ऐसा ही दिव्य प्रभाव होता है।

हाँ, माता-पिता की सेवा करनेवाला धर्मात्मा और ईश्वर का महान् भक्त होता है। वह महापुरुष है जो अपने माता-पिता की इच्छा के अनुकूल क्रियाएँ करता है और उन्हें प्रसन्न करने की निरन्तर चेष्टा करता है। माता-पिता की सेवा करने को सर्वोपरि धर्म कहा गया है। (मनुस्मृति २।१४५)

मेरे माता-पिता ईश्वर के अनन्य भक्त थे। उनकी ईश्वर भक्ति की थोड़ी चर्चा लोगों को दिव्य सन्देश देने की भावना से की गई है। भक्तों का चरित्र दिव्य तथा मंगलकारी होता है। मेरे पिताजी मुझे यही कहते थे :—‘इस ससार में सबसे बड़ी उपलब्धि भगवद् भक्ति है। भक्ति के लिए यह आवश्यक नहीं है कि भगवान् के किसी खास नाम और रूप की उपासना हो। भगवान् के अनेक अवतार हुए

हैं और उनके अनन्त रूप हैं। देवी देवताओं की पूजा भी भगवद्भक्ति है और देवताओं का पूजारी अन्त में भगवान् के पास ही पहुँचता है। श्रीमद्भागवत में भक्त-शिरोमणि प्रह्लाद ने कहा है कि जो ईश्वर-भक्ति करता है वह मानव-चरित्र के सारे सद्गुणों से अवश्य ही विभूषित हो जाता है। सदा सच है कि भगवद्भक्ति तथा माता-पिता की भक्ति से मनुष्य का लोक और परलोक दोनों सुन्दर तथा पवित्र बनते हैं। सारे शिक्षा सम्बन्धी विचार ईश्वरभक्ति के अन्तर्गत ही निहित हैं।

अन्त में ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि सबके जीवन में प्रभुभक्ति, माता-पिता की भक्ति और मानवीय चरित्र का पूर्ण उत्कर्ष हो। भारतीय संस्कृति में शरीर से अधिक महत्त्वपूर्ण आत्मा है। शरीर नाशवान् है लेकिन आत्मा के विकास के लिए साधन रूप है। शरीर का सच्चा उपयोग आत्मविकास के लिए होना चाहिए। भगवान् आत्मरूप हैं। अपने आप में भगवान् को जानना सच्चा ज्ञान है और उसमें विभोर रहना भक्ति है। ज्ञान और भक्ति में कहीं विरोध नहीं है। अध्यात्मशास्त्र में आत्मरमण ही सबसे ऊँची भक्ति है। भगवान् सर्वत्र हैं। अपने में भी हैं और बाहर भी हैं। सर्वत्र प्रभु-दर्शन ही सच्चा प्रभु-दर्शन है। यही आर्य संस्कृति है। सबका शुभ और मंगल हो।

मगध विश्वविद्यालय (गया)
रामनवमी, संवत् २०४१
(१०-४-५४)

सर्वकल्याणाभिलाषी,
दासानुदास
रामनन्दन प्रसाद चौरासिया
(श्रीसन्तजी)

माता-पिता के दिव्य रूप का स्मरण [२७

दो शब्द

भगवान् श्रीराम परात्पर ब्रह्म हैं। भगवान् का नाम स्मरण, कीर्तन तथा ध्यान, योगादि मानव जीवन के लिए उच्चतर मोपान है। वाल्मीकि रामायण में महर्षि वाल्मीकि ने श्रीराम को मानव जीवन से ऊपर परात्पर ब्रह्म तक घोषित किया है। वाल्मीकि रामायण चारित्रिक प्रधान है। उसे पढ़ने के बाद कोई भी मानव धन्य हो सकता है। इधर बहुत सारे ग्रन्थ भगवान् श्रीराम पर लिखे जा रहे हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी ने भगवान् श्रीराम को ब्रह्म मानकर ही रामचरितमानस लिखा है। यह समझने की चीज है। तुलसीदासजी के ब्रह्म राम से नाम अत्यन्त महान् है। उन्होंने कहा है :—

‘ब्रह्म राम ते नामु बड़ वरदायक वर दानि ।’

वाल्मीकि रामायण और रामचरितमानस दोनों में कोई अपार भेद नहीं है।

मानव ब्रह्म की प्राप्ति के लिए जितना महान् चरित्रवान् हो सकता है, उतना ही महान् वह रामनाम जपकरहो सकता है।

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवद्भक्ति प्रमुख है। जो अनन्यभाक् होकर भगवान् का भजन करता है, वह कितना ही छोटा क्यों न हो, वह अवश्य ही महामानव हो सकता है।

‘अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥’

(श्रीमद्भगवद्गीता ६।३०)

भगवान् का भजन सर्वोपरि है। भक्तों के लिए यह अत्यन्त ऊँची घात है। वह वाल्मीकि रामायण हो या रामचरितमानस हो, साथ ही श्रीमद्भगवद्गीता हो अथवा श्रीमद्भागवत महापुराण हो, सभी का निष्कर्ष भगवद्भजन ही है। इसे ही कुछ विद्वानों ने प्रपत्ति योग कहा है। वाल्मीकि रामायण में प्रपत्तियोग के अन्तर्गत ही शरणागति का ऐश्वर्य विनाल रूप में वर्णन किया गया है। तुलसीदास जी ने उत्तरकांड में प्रपत्तियोग का स्वरूप साफ शब्दों में उपस्थित किया है जिसे ‘दास्यभक्ति’ कहा गया है। दास्य-भक्ति में भजन का ही महत्त्व देखा जा सकता है :—

‘सेवक सेव्य भाव बिनु, भव न तरिअ उरगारि ।’

दास्यभक्ति साधारण भक्त के लिए ही नहीं, बल्कि महापण्डितों के लिए भी एक समान है। भक्ति का विविध रूप बड़े-बड़े ग्रन्थों में देखा जा सकता है किन्तु श्रीधर स्वामी जी का भाष्य गीता, श्रीमद्भागवत आदि महाग्रन्थों में पढ़ने के बाद यह सिद्ध हो जाता है कि प्रपत्ति या भक्ति ही मानव जीवन के परम कल्याण का एकमात्र उपाय है। भक्त भगवान् का नाम लेकर सन्त, ज्ञानी एवं विज्ञानी भी हो सकता है। शंकराचार्य ज्ञानी थे, किन्तु भगवान् की भक्ति का गान कर वे भी महान् भक्त के रूप में प्रसिद्ध हुए हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि भगवान् का नाम स्मरण सर्वथा अमोघ है। राम-नाम लेकर कोई भी महान् हो सकता है। शुकदेव, नारद आदि परमहंस ज्ञानी होकर भी भगवन्नाम के रसिक परमहंस

माने जाते हैं। अतः भक्त होना जीवन का सर्वोच्च साधन है।

प्रस्तुत ग्रन्थरत्न 'भगवान् श्रीराम' है। इसके उदीभमान भक्त लेखक श्रीरामनन्दन प्रसाद चौरासिया (श्रीसन्तजी) हैं। इन्होंने रामनाम के विविध रूपों को आगे रखकर जो कुछ भी इस अमूल्य ग्रन्थ में लिखा है, वह मानव कल्याण के लिए सर्वथा पठनीय तथा अनुकरणीय है। जो इस मंगलमय ग्रन्थ को पढ़ेंगे एवं तदनुकूल आचरण करेंगे, उनका उद्धार अवश्यम्भावी है। भगवान् श्रीराम इन्हें मनीषि बनावें तथा इनके ज्योतिर्मय यश दिग्दिगन्त में प्रसरित होते रहें, यही भगवान् से प्रार्थना है। अस्तु।

शुभेच्छ

रीडर,

सत्य नारायण चौधरी

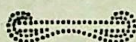
स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग,

मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

वैशाख शुक्ल पक्ष अक्षय तृतीया

श्री शुभ सम्बत् २०४१

(४-१-१९८४)



॥ ॐ श्रीहरिः ॥

❀ आशीर्वाद के दो शब्द ❀

ग्रन्थ-रत्न 'भगवान् श्रीराम' के प्रणेता श्रीरामनन्दन प्रसाद चौरासियाजी हैं। आप 'रामनाम' के परम साधक ही ही नहीं, वरन् भगवान् के दिव्य गुणों से विभूषित भी हैं। दिव्य गुणों तथा सन्तोषम शील के प्रभाव से आपको लोग 'सन्तजी' कहते हैं। आपका समस्त जीवन भगवान् श्रीराम

के आश्रित हैं तथा उनके प्रेम से आप्यायित हैं। ईश्वराधना में आपका कोई आडम्बर नहीं, अभिमान नहीं। बालकाल से ही आपमें भगवद्भक्ति के बीज विराजमान थे जो अब दिनोंदिन स्फुरित हो रहे हैं। आप अपने भक्तादर्श जीवन से अनेकों को भगवान् की ओर उन्मुख करते जा रहे हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में आपने यह सिद्ध किया है कि मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीराम का जीवन मानव-जीवन का मूल प्रेरणा-त्मक स्रोत है। श्रीराम को भूलना भारतीय संस्कृति की आधारशिला 'मर्यादा' को भूलना है। इस पुस्तक में आपने यह भी यत्र-तत्र-सर्वत्र दर्शाया है कि भगवान् श्रीराम प्रत्येक भारतीय के मानस में ओतप्रोत हैं। इस प्रसंग में आपने वाल्मीकि, तुलसीदास तथा अन्यान्य मनीषियों का विचार प्रस्तुत किया है।

मेरा पूर्ण विश्वास है कि प्रस्तुत पुस्तक-रत्न 'भगवान् श्रीराम' से मानवमात्र का आत्यन्तिक कल्याण होगा। अन्त में मंगलमय प्रभु से प्रार्थना करता हूं कि वे श्रीसन्तजी को दीर्घायु बनावें तथा स्वस्थ रखें और उनकी भगद्वाणी का अधिकाधिक प्रचार एवं प्रसार हो।

शुभेच्छः :

काली चरण शुक्ल

व्यवस्थापक,
धर्मसभा रमना,
गया।

गङ्गा दशहरा, १९८४ ई०





श्री रामनन्दन प्रसाद जी चौरासिया (श्रीसन्तजी) हिन्दी में भक्ति विषयक प्रौढ़ साहित्य के निर्माण में निरत हैं। आपने 'श्रीभगवन्नाम-रहस्य', 'भगवत्तत्त्व-मीमांसा', 'श्रीगौरांग महाप्रभु', 'अवतार-मीमांसा' एवं 'भगवान् श्रीराम' आदि भक्ति सम्बन्धी उच्च स्तरीय ग्रन्थों का प्रणयन कर हिन्दी में तद्विषयक साहित्य को समृद्ध करने में महान् योगदान दिया है। आपने अपनी रचनाओं के माध्यम से ज्ञान, भक्ति और ईश्वरीय तत्त्व का सुमधुर तथा सरस शैली में इस प्रकार व्याख्यान किया है कि सारे विषय पाठकों को स्वतः ग्राह्य हो जाते हैं।

श्रीसन्तजी द्वारा हमलोग गौरवान्वित हैं। उनका 'भगवान् श्रीराम' नामक ग्रन्थरत्न भगवान् श्रीराम के व्यक्तित्व एवं महिमा से महिमान्वित है। इस ग्रन्थ के द्वारा आज के जीवन में संजीवन का समावेश हो सकता है, ऐसा मेरा सुदृढ़ विश्वास है। मैं उनके स्वर्णिम भविष्य की कामना करता हूँ।

रीडर,
स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग
मगध विश्वविद्यालय, बोधगया
दिनांक ६-५-१९८४ ई०

राजवंश सहाय 'हीरा'

❀ आशीर्षचम ❀

श्रीरामनन्दन प्रसाद चौरासिया जिन्हें सब लोग भक्ति पथ के पथिक होने के नाते तथा सद्गुणों से विभूषित होने के कारण 'सन्तजी' कहते हैं, मेरे चिरपरिचित हैं तथा मेरे बहुत प्रिय हैं। उनकी पुस्तक 'भगवान् श्रीराम' अत्यन्त प्रेरणा-दायक तथा भगवान् की ओर उन्मुख कराने वाली है। इससे समाज का अवश्य ही हित होगा, ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है। इस पुस्तक में भगवान् राम की धर्मशीलता, उदारता, शरणागतवत्सलता आदि अनन्त गुणों का दर्शन कराया गया है। भगवान् ने स्वयं उनके हृदय में बैठकर उनसे यह मंगलमयी, सुधामयी पुस्तक लिखवायी है, अतः यह भगवत्प्रसाद है।

सत्साहित्य का सृजन जगत् का कल्याण करनेवाले सन्त पुरुष ही करते हैं। सन्तों की वाणी में भगवत्कृपा का प्रकाश रहता है। सन्त साहित्य से ही पारमार्थिक सत्ता का बोध होता है तथा जगत् की त्रिगुणमयी अति दुस्तर माया से पार होने का प्रशस्त मार्ग देखने लगता है।

मेरी शुभ कामना है कि श्रीसन्तजी की मंगलमयी रचना की सुगन्ध सर्वत्र फैले। भगवान् उन्हें दीर्घजीवी बनावें तथा भगवद्भक्तिपरक अन्य ग्रन्थों का प्रणयन करने हेतु प्रेरित करते रहें।

भगवत्-शरण

हरिमोहन शुक्ल

ग्राम तथा पो-छीवों
जिला-बाँदा (उ-प्र०)

श्रीमद्भगवद्गीता के विद्वान् सन्त

श्रीहरिः

शुभ कामना

‘भगवान् श्रीराम’ अमूल्य ग्रन्थ के रचयिता श्रीरामनन्दन प्रसाद चौरासिया (श्रीसन्तजी) हैं। भजन, कीर्तन, सत्संग स्वाध्याय आदि दिव्य कर्मों में रत रहना उनका जीवन है। श्रीभगवन्नाम-रहस्य, भगवत्त्व-मीमांसा आदि भगवद्भक्ति सम्बन्धी अनेक ग्रन्थों का प्रणयन कर उन्होंने भक्त-समाज को आनन्द का पथ-प्रदर्शन किया है। उनका यह काम अत्यन्त सराहनीय है। प्रभु इनका जीवन सफल करें।

डालमिया सदन,
के० पी० रोड, गया

गंगाधर डालमिया



श्रद्धार्पण

सचमुच श्रद्धा बहुत बड़ी वस्तु है। भगवान् तथा गुरुजन के प्रति श्रद्धा रखना आवश्यक है। जिनके हृदय में बड़ों के प्रति श्रद्धा नहीं होती, उनके जीवन में विकास हो नहीं सकता। अपने पूज्य बड़े भइया श्रीरामनन्दन प्रसादजी चौरासिया (श्रीसन्तजी) के प्रति, उनकी दयालुता तथा स्नेह-शीलता के प्रति सादर शीश झुकाता हूँ। उनके सत्परामर्श का अकुण्ठित प्रसाद मुझे सदा मिलता रहा है, जिसे कभी भूलना नहीं जा सकता है।

शुभेच्छा

अशोक नगर कालोनी,
गया (बिहार)

श्यामनन्दन प्रसाद चौरासिया

हृदयोद्गार

पुस्तक-रत्न 'भगवान् श्रीराम' के गुणनिधान रचयिता श्रीसन्तजी के बारे में कुछ सोचता हूँ तो मेरे हृदय-सागर में भावों की अनन्त लहरें लहराने लगती हैं। आधुनिक युग की भौतिक दौड़ में भी श्रीसन्तजी को त्याग, वैराग्य तथा अनेक गुणों से युक्त परमादर्श पाता हूँ। कर्म, वचन, लेखनी सब कुछ से वे ऋषितुल्य हैं। उन्होंने सरल तथा बोधगम्य भाषा में भगवान् श्रीराम के दिव्य चरित्र का चित्रण करते हुए मानवमात्र को अनुकरण करने के लिए मंगलमयी शिक्षा दी है। वे अमर हैं और उनकी कृति अमर रहेगी। इनके जैसा निःस्वार्थ सेवक और जीव-जगत् का कल्याण करनेवाले मुझे कम दीखते हैं।

इस पुस्तक में जो भी विचार, परामर्श और आदर्श प्रस्तुत किए हैं, उन्हें वे अपने चरित्र और पवित्र व्यवहारों द्वारा भी प्रकट करते हैं। श्रीराम के चरित्र को अपने जीवन में अपनाने के बाद ही उन्होंने भगवान् श्रीराम का आदर्श चरित्र अत्यन्त सुन्दर रूप में प्रस्तुत किया है। ऐसे लेखक और ऐसी लेखनी दोनों धन्य हैं, पूज्य हैं तथा समाज के लिए अनुकरणीय हैं।

इस पुस्तक के द्वारा श्रीसन्तजी की वाणी जिज्ञासु समाज में अधिकाधिक प्रचार तथा प्रसार पावे, यही मेरी मंगल तथा शुभ कामना है।

अन्दर गया,
गया (बिहार),

उमेशचन्द्र शुक्ल
अधिवक्ता

मंगल कामना

सर्व समर्थ भक्तवत्सल भगवान् से अपने पूज्यतम पतिदेव महाराज के जीवनोत्कर्ष के लिए सदा मङ्गल कामना करती हूँ। सचमुच भगवान् की कृपा अगाध है। वे जो कुछ करते हैं, मंगल के लिए ही करते हैं।

मुझे परम हर्ष है कि मेरे पुण्यपुंज गौरवस्तम्भ पतिदेव महाराज ने 'भगवान् श्रीराम' पुस्तक में भगवान् श्रीराम के समस्त आदर्शों के पूँजीभूत विग्रह पर अत्यन्त रमणीय प्रकाश डाला है। उनका सभी आदर्श लोकोत्तर है। लोक-सेवा का आदर्श अनुपम रूप में अभिव्यंजित हुआ है।

अन्त में मैं अपने पूज्य पतिदेव महाराज तथा मंगलमय प्रभु के चरणों में साष्टांग नमन करती हूँ और दया-सिन्धु भगवान् से प्रार्थना करती हूँ कि उनकी भक्ति निरन्तर पुष्पित और विकसित होती रहे।

विनीता,

गुमला, राँची (बिहार)

सुधारानी चौरासिया

भगवान् से निरन्तर प्रार्थना

मैं भगवान् से निरन्तर प्रार्थना करती हूँ कि मेरे परम पूज्य पिताजी में रामभक्ति की अजस्त्र धारा प्रवाहित होती रहे। उनके अमृतमय वचन की वृष्टि होती रहे।

इस धर्म पुस्तक से लोगों में धर्म की भावना जागरित होगी तथा धर्माचरण का विकास होगा, ऐसा मैं विश्वास करती हूँ। मुझे भी भगवान् का चरणाश्रय मिले, यही अभिलाषा करती हूँ।

बहोरा बिगहा, गया।

सुमनलता चौरासिया

❖ सम्मति ❖

‘सन्तजी’ की प्रस्तुत रचना सहृदयों के लिए काफ़ी संवेद्य है। श्रीजानकी-प्राणनाथ, रघुनाथ के नाम, रूप-लीलादिक सभी अतिमधुर हैं।

‘मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्।’

यह माधुरी कभी काव्य-शाखाओं पर वाल्मीकि के कोकिल-कण्ठ से निःसृत हुई तो कभी गोस्वामीजी रूपी ‘जगम-तुलसी’ की मञ्जरियों से आनन्द-कानन में टपकती रही। वास्तविकता यह है कि चाहे रससिद्ध कवीश्वर के कण्ठ से निकले या किसी अनाड़ी, ग्राम्य हठधर्मी राम-भक्त की जिह्वा से—भगवान् श्रीराम का गुणानुवाद माधुर्य-निधि होगा ही। सन्तजी, सन्देह नहीं, आनन्द-सिन्धु का अवगाहन कर रहे हैं और ‘रसो-वै-सः’ में अवगाहन के तरल छिटे उनकी कृतियों के माध्यम से विखर-विखर कर मुझे विश्वास है, पाठकों को भी पूतात्मा करेंगे।

सुदामा सिंह

रीडर,
श्रम एवं समाज-कल्याण-विभाग
मगध विश्वविद्यालय, बोधगया।

शुभ कामना

मेरे ऋषिकल्प परम पूज्य बड़े जीजाजी श्रीरामनन्दन प्रसाद चौरासिया (श्रीसन्तजी) उपजीव्य आर्पणन्त्यों के स्वाध्याय में निरत रहते हैं। जीवनादर्श की शिक्षा उपजीव्य धार्मिक साहित्य के स्वाध्याय से ही मिलती है।

मेरे जीजाजी दीर्घायु हों, यह भगवान् से प्रार्थना है।

शुभाकांक्षी

गुमला राँची (बिहार)

शम्भु नारायण चौरासिया

सम्मति

सन्तजी रचित 'भगवान् श्रीराम' नामक पुस्तक का सिंहावलोकन किया। पुस्तक सहज बोधगम्य और प्रवाहपूर्ण है। श्रीराम के चरित्र का विभिन्न दृष्टि कोणों से उद्घाटन, इसकी विशिष्टता है। श्रीसन्तजी ने भौतिक और आध्यात्मिक दोनों लीलाओं का श्रीराम में अन्वित करके देखा है। सन्तजी का सन्त स्वभाव इस पुस्तक में सर्वत्र झाँक रहा है। भगवान् की परम कृपा में आस्था और भक्ति का सम्बल लेकर ग्रन्थ रचा गया है, ऐसा प्रतीत होता है। श्रीराम के शील, शक्ति और सौन्दर्य के उद्घाटनोपरान्त, श्रीसन्तजी ने भक्त वत्सलता को जमकर दर्शाया है। अनेक सद्ग्रन्थों का रस लेकर यह मधु तैयार किया गया है जिसके सेवन से भव-रोग अवश्य समाप्त हो जायेगा, ऐसा मेरा विश्वास है।



स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग
मगध विश्वविद्यालय,
बोधगया।

गोपीनाथ पाठक

सम्मति

इस पुस्तक के लेखक श्री रामनन्दन प्रसाद चौरासिया मगध - विश्वविद्यालय - कार्यालय की लेखा प्रशाखा के पदाधिकारी हैं। निरन्तर अर्थ का लेखा-जोखा करते-करते भगवान् की अहैतुकी कृपा से इन्होंने जीवन का अर्थ पा लिया है और 'भक्त' पद के अधिकारी हो गये हैं। विश्व-विद्यालय-परिवार इन्हें 'सन्तजी' के नाम से जानता और पहिचानता है, इनके मूल नाम से नहीं। इनके सात्त्विक शील, सेवा परायण स्वभाव तथा निश्छल भक्ति के व्यंजक इस नाम के आगे महज लिखापढ़ी का अभिधामूलक नाम विलुप्त हो गया है।

परम प्रिय श्रीसन्तजी ने लोकमंगल की भावना से भक्ति एवं अध्यात्म-विषयक पाँच पुस्तकों की रचना की है। श्रीभगवन्नामरहस्य, भगवत्तत्त्व-मीमांसा, श्रीगौरांग महाप्रभु, अवतार-मीमांसा तथा भगवान् श्रीराम—ये पाँचों पुस्तकें भगवद्भक्ति की ओर प्रेरित करके मनुष्यमात्र का आत्यन्तिक कल्याण करनेवाली हैं। इन लोकोपयोगी पुस्तकों के द्वारा श्रीसन्तजी ने समाज और साहित्य की प्रशंसनीय सेवा की है।

ऐसे सत्साहित्य का प्रणयन तथा उसके अध्ययन का अवसर सुलभ होना अपने-आप में एक सौभाग्य है। मैं श्रीसन्तजी के भविष्य की मङ्गल कामना करता हूँ।

प्रधानाचार्य,
अनुग्रह मेमोरियल कालेज,
गया (बिहार)

विश्वनाथ सिंह

विषय-सूची



क्रम सं०	विषय	पृष्ठ सं०
१	मङ्गलाचरण	१
२	विषय प्रवेश	३
३	राम-तत्त्व	७
४	भगवान् श्रीराम	१४
५	भगवान् श्रीराम का अवतार	२२
६	श्रीराम-विवाह	३६
७	मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम	४०
८	लोकमत पालक श्रीराम	४७
९	शीलसिन्धु श्रीराम	५६
१०	सेतु-बन्धन में श्रीराम की धर्मशीलता	७०
११	श्रीराम की शरणागतवत्सलता	७५
१२	सर्वमान्यादर्श श्रीराम	८५
१३	श्रीराम और रावण के चरित्र में अन्तर	९७
१४	राम-राज्य	१०८
१५	भगवान् श्रीराम की अन्तिम लीला	११२
१६	रामभक्ति	११८
१७	रामनाम की साधना	१२६
१८	रामनाम-साधना में भावना	१४२
१९	रामनाम की महत्ता	१५०
२०	परिशिष्ट-संदर्भ-ग्रन्थ-सूची	१७७





श्री गणेशाय नमः

श्री जानकीवल्लभो विजयते

भगवान् श्रीराम

❀ मंगलाचरण ❀

ध्येयं सदा पङ्क्तिवध्नम भीष्ट दोहं
तीर्थास्पदं शिवविरिञ्चिनुत शरण्यम् ।
भृत्यार्हिं प्रणतपाल भवाब्जिपोतं
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥
त्यक्त्वा सुदुस्त्यजसुरेप्सित राज्यलक्ष्मीं
धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम् ।
मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधावद्
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥

(श्रीमद्भागवत ११।५।३३-३४)

हे प्रभो ! आप शरणागत रक्षक हैं । आपके चरणारविन्द
सदा-सर्वदा ध्यान करने योग्य, माया-माह के कारण
होनेवाले सांसारिक पराजयों का अन्त कर देनेवाले तथा

(२)

भक्तों की समस्त अभीष्ट वस्तुओं का दान करनेवाले कामधेनु-स्वरूप हैं। वे तीर्थों को भी तीर्थ बनाने वाले स्वयं परम तीर्थस्वरूप हैं। शिव, ब्रह्मा आदि बड़े-बड़े देवता उन्हें नमस्कार करते हैं और स्तुति करते हैं। चाहे जो कोई उनकी शरण में आ जाय, उसे वे स्वीकार कर लेते हैं। सेवकों की समस्त पीड़ा और कष्ट के नाशक तथा संसार-सागर से पार जाने के लिए जहाज हैं। महापुरुष ! मैं आपके उन्हीं चरणारविन्दों की वन्दना करता हूँ। भगवन् ! आपके चरण कमलों की महिमा कौन कहे ? रामावतार में अपने पिता दशरथ जी के वचनों से देवताओं के लिए भी वांछनीय और दुस्त्यज राजलक्ष्मी को छोड़कर आपके चरणकमल वन-वन घूमते-फिरे। सचमुच आप धर्मनिष्ठता की सीमा हैं। अपनी प्रेयसी सीताजी के चाहने पर जान-बूझकर आपके चरण-कमल मायामृग के पीछे दौड़ते रहे। सचमुच आप प्रेम की सीमा हैं। प्रभो ! मैं आपके उन्हीं चरणारविन्दों की वन्दना करता हूँ।



विषय प्रवेश



यूँ तो भगवान् बुद्धि में आने की वस्तु नहीं हैं लेकिन भक्तों का ऐसा अनुभव है कि जो जिस भाव से उन्हें पाना चाहता है, उस भाव से वे पकड़ में आ जाते हैं। हाँ, एक ही भगवान् भिन्न-भिन्न अवतार में आते हैं। वे युग की आवश्यकतानुसार आते हैं। अलग-अलग काल और परिस्थिति में अलग-अलग ढंग से ही मानव का कल्याण होना संभव होता है, अतः अवतार-भेद से भगवान् की लीलाएँ तथा चरित्र भिन्न-भिन्न रूप में देखे जाते हैं। यह कहना उचित ही है कि लौकिक बुद्धि से उन्हें नहीं समझा जा सकता है। श्रद्धा पूर्वक दीर्घकाल तक सत्सग तथा भगवान् का नाम लेते रहने से बुद्धि दिव्य बनती है और तब भगवद् सम्बन्धी बातें भी स्पष्ट प्रकाशित होने लगती हैं और दिन-प्रतिदिन विश्वास की मात्रा बढ़ती जाती है।

भगवान् की आराधना सदा से ही मैं राम के रूप में करता रहा हूँ और मेरी साधना रामनाम के जप के रूप में चलती रही है। राम नाम का अद्भुत प्रभाव मैंने पढ़कर, सुनकर और अनुभव कर देखा है। चित्त की मल को धो डालने के लिए और हृदय में आनन्दरस निरन्तर प्रवाहित करने के लिए इस राम नाम के जप से बढ़कर कोई दूसरी औषधि इतनी सुगमता और सहजता से प्राप्त नहीं हो सकती है, ऐसा मेरा अटूट विश्वास है। जिस प्रकार नदियों में गंगा, पहाड़ों में हिमालय, पुराणों में श्रीमद्भागवत महापुराण,

हिन्दी भाषा-भक्ति शास्त्रों में श्रीरामचरितमानस, वेद-विद्याओं में अध्यात्म विद्या, समस्त ज्ञानों में परमात्मज्ञान रसों में भक्ति रस सर्वश्रेष्ठ है, उसी प्रकार सभी आध्यात्मिक क्रियाओं में राम नाम जप की क्रिया सर्वश्रेष्ठ कही जा सकती है। वेदों में ऐसी चर्चा आयी है कि जो भगवान् की स्तुति करने में, उनकी लीला सुनने-गाने में असमर्थ है और जो पूर्ण अज्ञ है, वह केवल राम नाम का उच्चारण करके सब कुछ पा सकता है। रामनामोच्चारण से बढ़कर कोई अधिक मंगलकारी और शुभदायक कर्म नहीं कहा जा सकता है। राम नाम जप का अनुभव बताने वाले हमारे देश में अनन्त लोग हुए हैं, वर्तमानकाल में भी अनन्त हैं और भविष्य में भी अनन्तानन्त लोग होंगे क्योंकि यह मार्ग सहज है, सुलभ है और सबसे अधिक लाभप्रद है।

राम नाम जप की साधना कुछ काल तक करने पर बिना चेष्टा के ही होती रहती है जिसे “अजपाजप” कहा जाता है। राम नाम और भगवान् राम तथा उनका रूप तीनों एक ही हैं, इसीलिए भगवान्नाम प्रचारक श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा है :—

“नाम विग्रह और स्वरूप तीनों हैं एक रूप।

तीनों हैं अभिन्न तीनों हैं त्रिदानन्द रूप ॥”

भगवान् राम में जितने गुण हैं, वे सभी गुण रामनाम में भी निहित हैं। सारे संत जैसे श्रीकाष्ठ जिह्वा स्वामी, श्री गोपीमाथ कविराज, श्रीनामदेव तथा स्वामी श्री अखंडानन्द सरस्वती जी आदि ने ऐसा ही अभिहित किया है। श्रीरामचरित मानस में श्रीराम के गुणों से भी अधिक गुण श्रीराम नाम के अन्तर्गत दर्शाए गए हैं। देखा जाए :—

“एहि महँ रघुपति नाम उदारा ।
अति पावन पुरान श्रुति सारा ॥
मगलभवन अमंगलहारी ।
उमा सहित जेहि जपत पुरारी ॥”

श्रीतुलसीदासजी ने श्रीरामचरितमानस के नाम वंदना प्रकरण में एक लम्बी सूची प्रस्तुत की है और भगवान् श्रीराम से रामनाम को अधिक गुणकारी एवं प्रभावशाली सिद्ध किया है जैसे—

“राम एक तापस तिय तारी ।
नाम कोटि खल कुमति मुधारी ॥”

भले ही भगवान् के सभी अवतार पूर्ण होते हैं और सभी अवतारों के प्रति मेरे हृदय में प्रचुर श्रद्धा है, लेकिन फिर भी श्रीराम जैसा आदर्श अवतार मुझे कहीं नहीं दीखता है। उनकी विशेषताएँ मेरी आँखों के आगे सदा दीखती ही रहती हैं। वे मूर्तिमान् धर्म हैं।

मानव का जीवन तभी उन्नत बन सकता है जब उसके सामने कोई श्रेष्ठ आदर्श हो। विना आदर्श के ऊँचा जीवन नहीं बन पाता है। दृढ़ निश्चय, कठोर कर्मठता तथा आदर्श चरित्र तीनों मनुष्य जीवन को ऊँचा उठाने में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इस परम पवित्र भारत भूमि पर अनन्त महापुरुष आए और उन्होंने उत्तम जीवन व्यतीत कर लोगों को मार्ग दर्शन किया। लेकिन विग्रहवान् धर्म के रूप में श्रीराम को ही सिद्ध किया गया है।

राक्षस मारीच स्वभाव से ही आसुरी सम्पदा से भरा था। उसमें न दया थी, न धर्म। निष्ठुरता और दम्भ उसके अंग-अंग में प्रवेश किए हुए थे। वह भी राक्षसराज

रावण से श्रीराम के विषय में कहता है—

“रामो विग्रहवान् धर्मः” अर्थात् श्रीराम मूर्तिमान् धर्म हैं।

यह परम सत्य है कि श्रेय की प्राप्ति के लिए धर्म की ही शरण लेनी पड़ती है। अगर मूर्तिमान् धर्म ही मिल जाय तो इससे अच्छा क्या हो सकता है ?

धर्म का रहस्य श्रीराम जैसा जाननेवाला कोई नहीं है, यह दावे के साथ कहा जा सकता है। श्रीराम ने स्वयं कहा है— “लोकस्थाराधनार्थाय त्यजेयं जानकीमपि”

अर्थात् संसार की भलाई के लिए मंगलमयी श्रीजानकी जी को त्यागना पड़े तो भगवान् श्रीराम तैयार हैं।

भगवान् ने सनातन धर्म का उपदेश तो सृष्टि के आदि-काल में मरीचि आदि महर्षियों को दिया, लेकिन रामावतार में स्वयं ही उसका अनुष्ठान करके यह दिखाया कि उच्चतम जीवन क्या है। श्रीराम के चरित्र की विशेषता, उनके अवतार की विशेषता उनके आदर्श की विशेषता उनके नाम की अपार महिमा उनकी अपार रसमयी भक्ति आदि अनेक विषयों पर चर्चा करने की मुझे उत्कंठा उत्पन्न हुई। उत्कंठा उत्पन्न करने वाले सर्वसमर्थ महाप्रभु सर्वेश्वर श्रीराम ही हैं। वे जो कुछ प्रेरणा करेंगे वही प्रस्तुत किए जाएंगे। जो कुछ भी चर्चा होगी, उन्हीं मंगलमय प्रभु की चर्चा होगी जिससे जीवमात्र का कल्याण ही होगा।



राम-तत्त्व



राम-तत्त्व पर अनेक महापुरुषों ने अनेक ढंग से विचार किया है। स्वामी श्रीरामानन्दाचार्यजी ने “राम-तत्त्व” पर अपनी पुस्तक “श्री वैष्णवमताब्ज भास्कर” में विशेष प्रकाश डाला है। इस पुस्तक का श्लोक १० इस संदर्भ में विशेष द्रष्टव्य है। इसके अनुसार राम-तत्त्व विशुद्ध सनातन तत्त्व, पूर्ण परात्पर ब्रह्म तत्त्व है। श्रीरामानन्दाचार्यजी ने राम-तत्त्व को परमात्मा, परमेश्वर, हरि, भगवान् सब कुछ कहा है। श्रीमद्भागवत २।७।२३-२४ की व्याख्या करने के प्रसंग में स्वामी श्रीवत्सभाचार्य ने कहा है कि राम-तत्त्व, वेदतत्त्व, ईश्वर तत्त्व, भगवत्तत्त्व एक ही है। राम-तत्त्व की यही विशेषता है कि वह असीम, अपार, अनन्त तथा अगाध है। इसका वर्णन कितना भी किया जाय, किन्तु फिर भी वह अपूर्ण ही रहता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि राम-तत्त्व के विषय में पूरी तरह कोई नहीं जान सकता है। वेदों में इसे “नेति-नेति” ही कहा है। आद्य शंकराचार्य, रामानुजाचार्य आदि महापुरुषों ने राम-तत्त्व का भगवत्तत्त्व ही कहा है और यह वही है जो श्रीमद्भागवत १।५।११ में है :—

“वदन्ति तत्तत्त्वं विदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम् ।

ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्दते ॥”

श्रीमद्भागवत ३।३२।३३-३६ में श्रीकपीलदेवजी अपनी

(८)

माता जी से कहते हैं कि “जिस प्रकार रूप, रस एवं गंध आदि अनेक गुणों का आश्रयभूत एक ही पदार्थ भिन्न-भिन्न इन्द्रियों द्वारा विभिन्न रूप से अनुभूत होता है, वैसे ही शास्त्र के विभिन्न मार्गों द्वारा एक ही भगवत्तत्त्व की अनेक प्रकार से अनुभूति होती है। नाना प्रकार के कर्म-कलाप, यज्ञ, दान, तप, वेदाध्ययन, वेदमीमांसा, मन और इन्द्रियों के संयम, कर्मों के त्याग, विविध योग, भक्तियोग, निवृत्ति और प्रवृत्ति रूप सकाम और निष्काम दोनों प्रकार के धर्म, आत्मतत्त्व के ज्ञान और दृढ़ वैराग्य इन सभी साधनों से निर्गुण-सगुण स्वयं प्रकाशमय भगवत्तत्त्व को प्राप्त किया जाता है।” इसी प्रसंग में देवहूतिजी भगवत् तत्त्व की प्राप्ति करने के संदर्भ में श्रीमद्भागवत ३।३।५-७ में कहती हैं—

“भगवन्नामों का श्रवण या कीर्तन करने से भूले-भटक कुत्ते का मांस खाने वाला चांडाल भी सोमयाजी ब्राह्मणों के समान पूजनीय हो सकता है और भगवत्तत्त्व-प्राप्ति का अधिकारी बन सकता है। जो पुरुष भगवन्नाम उच्चारण करते हैं, वे तप, हवन, तीर्थ स्नान, सदाचार का पालन और वेदाध्ययन सब कुछ कर लेते हैं।”

अतः राम-तत्त्व ही भगवत् तत्त्व है जिसकी चर्चा गोस्वामी तुलसीदासजी “श्रीरामचरितमानस” में रामकथा के द्वारा करते हैं और इसे अगाध, अनन्त कहते हैं, देखिए :—

“कथा अलौकिक सुनहि जे ग्यानी ।

नहि आचरजु कसहि अस जानी ॥

रामकथा कै मिति जग नाही ।

असि प्रतीति तिन्ह के मन माहीं ॥

अतः समुत्पन्न श्रीराम में विद्यमान होने
विषय ही बहुत बड़ी बात है। विना विचार के पूर्णब्रह्म
परमार्थ श्रीराम की शक्ति समझ ले। विना उनकी

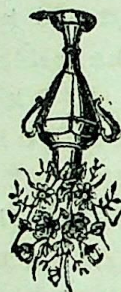
दीक्षा:—

आश्चर्य क्या है? तुलसीदासजी की अनुभव बातों में
पुरुषों की मोह ले जाय, अविद्यमान हो जाय तो इसमें
है, अर्थात् बड़ी-बड़ी की जब मोह ले जाता है तब सामान्य
उस परमार्थ के समुत्पन्न श्रीराम में मोह उत्पन्न हो जाता
विरामात्मक में यह स्पष्ट बताया है कि ब्रह्मा, शंकर की भी
की कृपा से सम्भव है। श्रीरामजी तुलसीदासजीसे श्रीराम-
प्राप्त: पहुँचे हो जाया करता है। सदैव मित्रता उभी परमार्थमा
कारण उस प्रभु राम की सर्वव्यापकता में सामान्य पुरुषों की
के कारण और अन्तःकरण पर ही विश्व-विषय आवरण रहने के
परमार्थ ही अवलोकन रूप में आए किन्तु पूर्ण अनुभव न होने
भी विद्यमान नहीं होता है। अर्थात् श्रीराम पूर्णब्रह्म
नहीं, उसके समान कोई नहीं। उसके समुत्पन्न साकार रूप में
का भी विना है और पुरुषों का भी गुण है। उससे बड़ा कोई
ही प्रमाण हुआ है। परमार्थमा देवों का भी देव है, पिताओं
बड़े भी परमार्थमा की बड़ा आहूँ है, बड़े "राम" गुरु का
जाता है। अर्थात् एक ही परमार्थमा का बोधक राम है।
हैं, अर्थात्, समुत्पन्न, मित्रता सभी सोमार्थों से परे बताया
राम ही ब्रह्मविरक्त है। रामसेही साक्षात् में श्रीराम की
अर्थात् राम ही परब्रह्म है, राम ही परम तत्त्व है। और
राम एवं परब्रह्म श्रीरामो ब्रह्मविरक्तम् ॥
"राम एवं परब्रह्म राम एवं परब्रह्मः।"

पीछे उनके जीव आदि का वर्णन किया और उसे भी आशा
 कहा । मैं स्पष्ट रूप से कहना चाहता हूँ कि भावना
 का धर्म अपनाते से ही भागवान् का सच्चा ज्ञान उत्पन्न होता
 है, अतः धर्म भागवान् की जातसे और पाते का एक रसना
 हो है। धर्म धर्म देवदत्त की और हो ले जाते हैं, अतः धर्म
 धर्म का आदर करना भी मानव धर्म हो है । जैसे एम० ए०
 की उपाधि के बाद ही कोई एम० एच० हो करता है, उसी
 प्रकार धर्मधरण द्वारा ही देवदत्त की और बहना क्षमिक
 निकल है । लेकिन मैं यही शीराम को पहले ही भागवान्
 स्वीकार कर उसकी चर्चा करना चाहता हूँ ।
 अवतार भागवान् की ही होती है । भागवान् सनातन
 है । वेद भी सनातन है । ऋग्वेद सं० १०।३।३ में रामावतार
 का उल्लेख है । उपनिषद् में "रामपूर्ववर्तिनी-उपनिषद्"
 में शीराम की भागवत की विष्टाद चर्चा है ।
 रामकर्म अवतार लेकर भागवान् ने वैदिक सिद्धांतों का
 विशुद्ध अस्मिन्मय करने का प्रयत्न किया । अथर्ववेद ३।३०।३ में
 कहा गया है—“मा धाता आदरं दिक्षन् मा स्वधारमुत्त
 स्वधा” अर्थात् माई-माई से डे प न करती बाला बने । छान्दा
 माई बड़े माई की पिताके समान मानकर उसके आदेशानुसार
 चलनेवाला हो और बड़ा माई छोटे माई के दोषों को न
 देखनेवाला बने । वहिन वहिन से मे म करनेवाली बने ।
 अपना वहिन की सौभाग्यवर्ति देखकर उससे न जले, न ईर्ष्या
 करे ।
 भागवान् राम सगुण भी हैं, निर्गुण भी हैं और दोनों से
 परे भी हैं । वे केवल अनुभवयोग्य हैं । राम-रहस्योपनिषद्
 में लिखा भी है :—

[illegible]


 ১৭১৪ ১৭১৫
 



“सोई धन्य सोई बंध्यानी । जा मन राम चरण अतुरानी ॥”

सदा सब ॐ :—

ॐ श्री गुरु नारायण नमः ॥
 वेदां का वाचस्पत्य श्रीराम से ही है । सारे यज्ञों के उद्देश्य
 श्रीराम ही है । सारे यज्ञ उनके लिए ही किए जाते हैं और
 समस्त कर्मों की परिसमाप्ति भी उनसे ही है । सारी
 लक्ष्म्या तथा सारे ज्ञान उनके लिए ही प्राप्त किए जाते हैं ।
 (रामचन्द्रजी उक्तिवत्)
 रामचन्द्र जी अविचल्य चरन्त हैं । इसपर विचार करना
 आसान नहीं है । इसपर विचार करना सारी अनधिकार
 वेदा है । इस वेद पर वेद, गुराणों से प्रचुर प्रकाश ज्ञान
 और सारी लक्ष्म्या वेदा ही है वैसे ही वेदा ही है वैसे ही वेदा ही है ।

राम तत्व एक ही परम तत्व है जिसके अन्तर्गत निर्गुण
 निराकार, सगुण निराकार तथा सगुण साकार तीनों स्वरूप
 वताने जा सकते हैं अर्थात् ये सादे स्वरूप रामतत्व के ही हैं।
 अतः रामतत्व वह अद्वितीय तत्व है जो एक ही साथ निर्गुण
 निराकार, सगुण निराकार तथा साकार सब कुछ है।
 समुच्चय में वह परम सत्य तत्व क्या है और क्या नहीं है,
 इसका निश्चय या सीमाया करने में एकमात्र अपरिहार्य साधन
 या साधनकृपापात्र महामुक्तावन ही सक्षम है। यह रामतत्व
 सभी मनों, सभी वादों, सभी विचारों में अन्तर्भूत होने हुए
 सभी सबसे परे है। यह न एक है और न अनेक है अर्थात् यह
 न निराकार है, न साकार है और एक भी है, अनेक भी है,
 निराकार भी है, साकार भी है तथा इन दोनों स्थितियों के
 मध्य भी है और इनसे परे भी है। यह रामतत्व अन्तः
 और इसकी महिमा भी अन्तः है। इस अन्तः प्रभु की कृपा के
 जो कुछ भी बर्ण होती है, उसी अन्तः प्रभु की कृपा के
 प्रकाश में होती है। इस पुस्तक की रचना में साधक ११ ही
 मुख्य कारण हैं और इसमें उन्नीस की अमृतमयी वर्षा जन-
 कल्याण के लिए हुई है। मुझे ऐसा लगता है कि वह परम
 कृपालु प्रभु इसमें स्वयं कृपापरवश प्रकट हुआ है।

अतः मैं निष्कर्ष के रूप में यह अवश्य कहने जा सकता
 है कि संतसाहित्य के अनुसार रामतत्व से बहकर कोई अन्य
 तत्व नहीं है। रामतत्व में ही निर्गुण, सगुण आदि सादे
 सिद्धांत परवर्तमान करते हैं। सादे प्रमाणरूप इसीके अन्तर्गत
 हैं। सादे महामुक्तावन रामतत्व की "परतत्व" कहा है अर्थात्
 सर्वोपरि तत्व अस्मिन्निव किया है। इससे आठवीं में रामतत्व
 अक्षय तत्व है, अतः उक्तकी सभी लीलाएँ विस्मय एवं

करते हैं।

कोटि के ईश्वर उत्पत्ति, पानन तथा सहोदर आदि किमपि
जैसे ऊँचे साधकों ने ऐसे ईश्वर का भजन किया है। इसी
वम धर्मों से नहीं देखा जा सकता है। कबीर, नामक
और दूसरी गुण अवयव विद्यमान रहते हैं, लेकिन उन्हें इन
भाणी उन्हें भी नहीं भज सकते हैं। ऐसे ईश्वर से ही जो कि
और मन से भजन करने योग्य है, लेकिन साधारण स्तर के
साधु निराकार ब्रह्म जिसे ईश्वर कहते हैं, वह वाणी
प्रप्त नहीं है।

को न प्राप्त कर प्राप्त नहीं आती है क्योंकि वह इन्द्रियाँ द्वारा
अर्थात् वाणी मन सहित उस निर्गुण निराकारपूर्ण ब्रह्म
“यही वाणी निवर्तने अर्थात् मनसः”

भजन होता है। अर्थात् भी कहते हैं—
किता जा सकता। प्रकृति से परे आत्मा द्वारा ही उसका
भन, वाणी से उस निर्गुण निराकार ब्रह्म का भजन नहीं
अनुभवगत भक्ति कहें सार्वभौम ॥”
“ब्रह्म अर्थात् अखण्ड अनन्त।

ही बताया है और वर्णन करने योग्य नहीं करते हैं, देखिए—
दासजीने भी ‘श्रीरामचरितमानस’ में उसे केवल अनुभवगत
बोला है, वह उसका वर्णन कैसे ही सकता है? श्रीगुरुजी-
निर्गुण निराकार के विषय में अविश्वस्य, अविद्वेय और अत्यन्त
श्रीमद्भगवद्गीता के चारहवें अध्याय में भगवान् श्रीकृष्णने
वर्णन होता है, वह एक संकेतमात्र ही कहा जा सकता है।
निराकार का भगवान् कोई नहीं कर सकता। जो भी
अव समझ की गहराई का पता कीन है? इसी प्रकार निर्गुण

पता लगाते वना । वहे उसी समय से धनकर मिल गया ।
 है कि एक नमक का पुतला था । वहे समय की गहरी क
 और मज्जिम पर महेस महारिज जीने एक सुन्दर उदाहरण दिया
 उसके विषय से बताते वाला कोई रह गये जाते है जैसे
 प्राप्त कर लेता है, अर्थात् उससे जीत हो जाता है । फिर
 होता है । योगी निर्विकल्प समाधि में उसके साथ एकरव की
 निर्विकल्प अवस्था में रहता है । वहे आन के द्वारा ही अनुभूत
 की स्थिति में प्रकृति से निरन्तर अतीत रहता है अर्थात्
 निर्गुण निराकार पूर्णब्रह्म परमात्मा अर्थात्, असीम,
 सर्व है ।

पुस्तक में भी संग्रह साकार दशरथनन्दन और म को अधिक
 महत्व उपासना के दृष्टिकोण से सबसे अधिक है । इस
 समस्त रचना बहिष्कृत के वहे के इस संग्रह साकार रूप का
 वर्षा संग्रह साकार के रूप में पुरानी में अधिक है । यहाँ यह
 है क्योंकि वे ही पठे प्रवर्णन रहते है । और म, श्रीकृष्ण की
 प्रयोग विशेषकर संग्रह साकार वहे के लिए ही किया जाता
 है कि नया पुराणिक साहित्य में "भगवान्" शब्द का
 प्रथम प्रयोग राम भगवान् ॥

"एहि महे आदि मध्य अवसथा ।

बाली विशेष :—

दशरथनन्दन और म की सर्व भगवान् कहा है । उन्हीं की
 गुणसिद्धि से भी "और मविरामनाम" में संग्रह साकार
 स्वयम्" कहा गया है । निगमात्म—महान् सन्त गुरुवर्मा
 पञ्चमसप्तम है । "महाराजमय" में "रामरत्न भगवान्
 रूप में प्रकट हुए बिना भगवान् राम कहते है, क्योंकि वे
 वही वहे "संग्रह साकार वहे" दशरथनन्दन, कौशल्यासुत के

श्रीराम धर्मविराजित ब्रह्म ब्रह्मात्मक है। विष्णु
 विराकार तत्त्व की ब्रह्म कहते हैं। ब्रह्म ब्रह्म ब्रह्म ब्रह्म
 शक्ति की अपने में प्रकट कर लेते हैं तब उनकी "सृष्टि"
 विराकार ब्रह्म" अथवा "ह्रस्व" कहते हैं। श्रीरामचन्द्र के
 इस रूप का अधिपत गुणगान कबीर, गोपक, दासदयाल,
 रतिराजादेव, श्रीराजादेव आदि सब कविओं ने किया है।

सकते हैं ?
 मन्दिर की वे ही भलीभाँति जानते थे। अन्ध लोग क्या जान
 है—यह विषय उस के मन में सदा बना रहता। श्रीराम के
 और ह्रस्व का नाम होता है और ब्रह्म आत्मपूर्ण बन जाता
 था। श्रीराम की आत्मागति से मन्दिर के जीवन में आगति
 ब्रह्म की अधिपति थी, वह इस रामनाम की लेकर हो
 जाते थे। उनकी भाषा में जो एक अधिपति आत्म-
 "श्रीरामकृष्ण परमहंस प्रसिद्धि और में उठकर रामनाम
 श्रीरामकृष्ण परमहंस ने श्री रामचन्द्र की चर्चा आगे
 तत्त्व के रूप में की है। ब्रह्म से ग्रन्थों में ऐसी चर्चा है और
 ब्रह्म परमहंस ने श्री रामचन्द्र की चर्चा आगे
 करते हुए कहा है।

करना होता। वर्णन करने ही विषय-विषय रूप से हो, किन्तु
 की उसकी और उद्देश्य करना है जिससे सबका सम्बन्ध
 उद्देश्य भावचन्द्र की प्रति करना है और यदि श्रीराम
 तत्त्व राम-चन्द्र या भावचन्द्र ही कहना चाहिए अर्थात् सबका
 इस प्रकार यदि आकर ग्रन्थों तथा विद्वत् ग्रन्थों का मैं
 (श्रीरामचरितमानस आलोक १३३)

श्री आचार्य न मतिरहे, लिखें विमल विचार ॥

राम अर्थात् अर्थात् राम, अधिपत कथा विराजित।

मर्यादित व्यवहार, सदाचार और दैवी-सत्पत्ति के गुण भक्ति के लिए होते हैं। यदि भक्ति हो मित्र गढ़े तो शील, सदाचार और तो स्वयं स्वयं प्रीतिवत् और विकसित होते हैं, अवः शीराम की याचना मानकर उनकी भक्ति करना अधिक महत्त्वपूर्ण है और इसमें पवन का भय कभी नहीं है। सबसे अधिक रहस्य की बात यह है कि सरसग, स्वाध्याय और ईश्वर मनुष्य में परमरसमयानि का विचार होता है तो वह इसके लिए दैवी-सत्पत्ति को धारण करता है। इस संदर्भ में स्वामी रामसुखदासजी महाराज "जीव की सत्पत्ति और श्रद्धा" पुस्तक में कहते हैं कि "जीवने की दैवी-सत्पत्ति के गुणों की मनुष्य अपने बल से उपार्जित करता जाहता है और इसके लिए जीवनी खोज करता है, उससे उसका अभिमान हो पुष्ट होता है। जीवने की दृष्टि-दृष्टांतर है, सब के सब अभिमान की छाया में रहते हैं और अभिमान से ही पुष्ट होते हैं। इसलिए शील, सदाचार तथा जिवन की सत्पत्ति होना, उस सत्पत्ति में अहंकार तथा को रूपा और आधुनिक-सत्पत्ति सदा जीवित रहेगी तथा जीव की सत्पत्ति रहेगी। कवन भक्ति हो ऐसी वस्तु है जिससे जीव का अहंकार नष्ट हो सकता है और इसमें किसी तरह से पवन नहीं होता है।" अवः शीराम, रामायण, श्रीमद्भगवत सबमें भक्ति करने की ही उपदेश है। हाँ, यह भी सत्य है कि सदाचार, शील, स्वाध्याय, सदाचार और दैवी-सत्पत्ति से भक्ति करने की ही शक्ति है और इससे जीव का अहंकार नष्ट हो सकता है और इसमें किसी तरह से पवन नहीं होता है।" अवः शील, सदाचार तथा जिवन की सत्पत्ति होना, उस सत्पत्ति में अहंकार तथा को रूपा और आधुनिक-सत्पत्ति सदा जीवित रहेगी तथा जीव की सत्पत्ति रहेगी। कवन भक्ति हो ऐसी वस्तु है जिससे जीव का अहंकार नष्ट हो सकता है और इसमें किसी तरह से पवन नहीं होता है।" अवः शीराम, रामायण, श्रीमद्भगवत सबमें भक्ति करने की ही उपदेश है। हाँ, यह भी सत्य है कि सदाचार, शील, स्वाध्याय, सदाचार और दैवी-सत्पत्ति से भक्ति करने की ही शक्ति है और इससे जीव का अहंकार नष्ट हो सकता है और इसमें किसी तरह से पवन नहीं होता है।" अवः शील, सदाचार तथा जिवन की सत्पत्ति होना, उस सत्पत्ति में अहंकार तथा को रूपा और आधुनिक-सत्पत्ति सदा जीवित रहेगी तथा जीव की सत्पत्ति रहेगी। कवन भक्ति हो ऐसी वस्तु है जिससे जीव का अहंकार नष्ट हो सकता है और इसमें किसी तरह से पवन नहीं होता है।" अवः

श्रीराम नर रूप में नारायण हैं। श्रीराम के शील की यही विशेषता है कि वे जोर कट उठकर भी धर्म का पालन करते हैं। मनुस्मृति में शील और आचार को धारण करना "धर्म" कहा है और महो वारंवारिकजीने मानवीय गुणों को धारण करना "धर्म" बताया है। दोनों धारणीय महोष्यों में एक ही मर्य को अपने ढंग से कहा है।
 गुलसीदासजीने अपने ग्रन्थ "श्रीरामचरितमानस" को पुराण के ढाँचे पर खड़ा अवश्य किया है, परन्तु वह पुराण से बड़ी वस्तु है। उनका विचार महो वारंवारिक से अधिक सूक्ष्म और श्रेष्ठ है। गुलसीदासजी के विचार की ऊँचाई सामान्य मनुष्य नहीं समझ सकता है। वारंवारिकजी के विचार भी निश्चय ही लोक-कर्याण के लिए हैं और उनकी शान्ति में लोक कर्याण ही निहित है, लेकिन गुलसीदासजी जो रामशक्ति पर अधिक बल देते हैं, यह रहस्य अवश्य विचारणीय है। शक्ति की भावना अपने पर शील, आचार विचारों की संपत्ति के गुण शक्तों में स्वभाविक रूप से रहते हैं। आदि देवी संपत्ति के गुण स्वतः स्वाभाविक ही आ जाते हैं। देवी संपत्ति के गुण शक्तों में स्वभाविक रूप से रहते हैं। कोई भावना की शक्ति करे और शील, सदाचार न आवे, यह असंभव है। इसी दृष्टिकोण से गुलसीदासजीने शील आचार पर उतना बल नहीं दिया है जितना बल भावना की शक्ति पर दिया है। श्रीमद्भागवत नव स्कंध के नव अध्याय में ठीक ही कहा गया है कि जो लोग कभी देवी-देवताओं का भावना पर दिया है। श्रीमद्भागवत नव स्कंध के नव अध्याय

वादमौलिकों वरदानों के प्रकार में अपना दृष्टिकोण प्रकट
 करते हुए कहते हैं कि श्रीराम शीलपीयूष-सिन्धु है। रावण
 शीलहीन, आचरणाहीन है। रावण की तरह जो शीलहीन
 और सदाचारहीन है, उनके जीवन में निरंतर द्वार ही होती
 है, अर्थात् उन्हें कभी सफलता नहीं मिलती है। यह सबकी
 समझ रखने योग्य है कि राम की तरह शीलवान तथा
 मर्यादापूर्ण आचरणों का पालन करनेवाला ही जीवन में
 विजयी हो सकता है। राक्षसी प्रवृत्तियों वाला मनुष्य
 रावण का ही प्रतीक है और शील आदि देवी सदापूज्य बाले
 राम की ओर वर्तनेवाले राम के भक्त हैं।
 सच्ची बात तो यह है कि शील तथा मर्यादा की स्थापना
 करने के लिए ही अखिल ब्रह्मिण्यक परब्रह्म परमेश्वर ने
 शीलसिन्धु श्रीराम के रूप में इस धरातल पर अवतरित हुए।
 साक्षात् धर्म के स्वरूप में ही भावान् राम ने शील अर्थात्
 अनेक मानवीय आदर्श गुणों को प्रस्तुत कर मानवता का
 दिव्य पथ दिखलाया है। स्वामी श्री अखण्डानन्द सरस्वतीजी
 महाराज ने अपनी पुस्तक 'श्रीमद्भगवद्गीता-टीकाप्रामाण्य'
 में सरयु जी लिखा है कि समस्त वैदिकशास्त्रों का सार भागवान्
 श्रीराम के शील एवं चरित्र में स्थापित कर दिया गया है।
 श्रीराम के चरित्र के माध्यम से मानवमात्र की मूल सद्गुण
 यही दिया गया है कि कोई भी व्यक्ति अपने शील एवं उचित
 चरित्र के द्वारा विषयों में भागवान् के समान बन सकता है।
 श्रीराम के जीवन में ही वास्तविकजीने श्रीराम
 की साक्षात् धर्म का विग्रह कहते हैं और लोक संसार की
 भावना से परितः होकर ही उनके आदर्श चरित्र का गान
 किया है जिसे अतिथी ११ सारसमञ्जस ज्ञान है। उनके

अंग्रेज कवि बेन्सन ने भी शील, अहंकारशून्यता आदि गुणों की अपवादे के लिए बहुत ही आग्रह किया है। उनकी पंक्तियाँ उद्धृत कर रहा हूँ: —

“The man of upright life,
Whose guileless heart is free,
From all thoughts of vanity,
Is a real man in deed.”

व्यक्तित्व और सामाजिक किराँ भी धरातल पर शील एवं आदर्श चरित्र की अनपेक्ष्यकता है। किसी भी समाज जाति, देश की उत्पत्ति शीलवान् तथा चरित्रवान् व्यक्तियों पर ही निर्भर करती है। औराम का शील तथा आदर्श चरित्र पढ़ने-सुनने का लक्ष्य अपने चरित्र का निर्माण करना ही है।

शील और आचार की आवश्यकता और महत्ता मानव-जीवन में कितनी है, यह ठीक-ठीक शब्द द्वारा नहीं बताया जा सकता है। हृदय में विचार कर देखा जाए तो अतिम विचार यही आता है कि शील ही संपूर्ण धर्म का प्रण है, आधार है। एक सन्त श्री केशरिनारायण जी ने ‘विवेक और साधना’ पुस्तक में कहा है कि शील और आचार की साधना ही शुद्ध धर्मिक की साधना है। शील का संसार ही आला और निराशा है। जिसमें शील की परीकाछा है और जो शील-गुण का केंद्र है और जहाँ से शील तथा विद्युद् आचार निकलते हैं और तबतकल आचरण कर सकते हैं। महर्षि

महो दीखता है।
 वलसीदासजीने राम का वर्णन अधिक भगवान् के रूप में
 किया है, लेकिन बारम्बार अधिक वर्णन सत्पुरुष के रूप में
 ही किया है। सत्पुरुष में शील और चरित्र की विशेषता के
 गुण भगवदीय गुण ही होते हैं, अतः गुणों की दृष्टि से वलसी-
 दासजी के श्रीराम और महर्षि बारम्बारिक के श्रीराम में कोई
 अन्तर नहीं पड़ता है। महर्षि बारम्बारिक का कहना है कि
 श्रीराम केवल वेदा गुण में ही नहीं हुए, अपितु वे आज भी
 इस धरती पर वर्तमान हैं। उनके शील और गुणों की
 तन्मात्राएँ आज भी इस धरती पर हैं। कोई भी धरती का
 पुत्र रामके शील तथा चरित्र को अपनाकर राम बन सकता
 है। रामके शील और गुणों के कारण ही राम का नाम
 अधिक फैला है। इस प्रकार बारम्बारिक रामायण में अभिप्रे-
 रित से रामके शील एवं चरित्र का वर्णन है। सत्पुरुष ही
 सत्पुरुष की शिक्षा दे सकता है और गुण भी सत्पुरुष ही हो
 सकता है। रामका शील एवं चरित्र ही गुण के रूप में है।
 श्रीहर्गरेजी महाराज, श्रीअखण्डानन्दजी महाराज, श्रीनारदा-
 नन्दजी महाराज आदि मनोविषयी एवं शास्त्रों की दृष्टि में
 शील और चरित्र की सर्वाधिक महत्ता है। शील और
 सदाचार ही सत्पुरुष की श्रेष्ठता की कसौटी है। शीलहीन
 तथा आवांछनीय सत्पुरुष का लोक, परलोक दोनों विगड़वा
 है। श्रीराम के शील की चर्चा आज भी शोधकों में की
 जाती है। "श्रीरामचरित्र से शिक्षा" शीर्षक अधिक महत्त्वपूर्ण
 है। उस शीर्षक में यह दिखलाया गया है कि श्रीराम अपने
 शील और चरित्र द्वारा मानवमात्र को किस तरह शिक्षा
 देते हैं।

करना उनके शीलके अनुभव उदाहरण है। जो सीमाय
 दशरथजी को प्राप्त नहीं हो सका, वह सीमाय गुरुज
 ज्ञान्य की भावना राम ने महज सुलभ बना दिया, यह शील-
 सिद्ध रामके उदार व्यक्तित्व की सुन्दर शक्ति है। इसी
 प्रकार निरादरान के साथ मित्रता और शत्रुता के उदाहर
 के प्रसाग में भागवान् के अनुभव शील की उजागर हुआ है।
 उनका शील अद्भुत जति-पाति के पवड से विरक्त निराल,
 निर्धर्म अति-निष्ठा की भाँति पूर्ण शुद्ध एवं देदीप्यमान है।
 सभी रामायणों में तथा जहाँ भी उनके चरित्र का
 उल्लेख है, वहाँ उनके शील का प्रकाश ही उगादा दीखता
 है। इस पुरतक में भी सर्वत्र उनके चरित्र में शील का ही
 प्रदर्शन किया गया है। यह कहना अक्षर्या: सत्य है कि
 वास्तविक रामायण तथा श्रीरामचरित मानस में उनके शील
 एवं चरित्र की अविमम परीकाएत है।

यहाँ महत्त्वपूर्ण बात यह कहना चाहता हूँ कि महर्षि
 वास्तविक ने श्रीराम का अधिक वर्णन एक आदर्श महामानव
 के रूप में किया है। इसमें उनकी लोक कल्याण भावना की
 लहरें लहराती हैं। उनका कहना है कि "नहि मान्यता लोके
 किमपि श्रेष्ठम्" अर्थात् महत्त्व से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है।
 महत्त्व आदर्श शील और चरित्र की अपाकार भावना वन
 सकता है। श्रीराम महत्त्व दो वे हूँ उन अपने शील एवं महान्
 चरित्र के द्वारा ही भागवान् है। शीलसिद्ध राम की तरह
 सदाचार्य चरित्र अपाकार कोई भी महत्त्व भागवान् बनने
 का दावा कर सकता है। यही महर्षि वास्तविक का श्रीराम
 के शील एवं चरित्र माने का उद्देश्य कहे जा सकता है।
 शील और चरित्र की महिमा माने वाला उनके समान कोई

शक्ति, शील और सौन्दर्य की विशेषता का संगम भगवान् रामके चरित्र में देखते हैं। वास्तविक रामायण तथा तुलसी-दासके श्रौरात्मविरचितामृत दोनों में इन तीनों महान् गुणों का परम प्रकाश प्राप्त होता है। गौराज जटायु की सेवा से प्रतिभूत होकर उनकी अपनी गौर में ले लेना तथा अपनी जटा से उनके शरीर के रजकण की झड़ना एवं उनके दुःख को देखकर सीता-विद्योग जैसे महान् दुःख की शीघ्र ही शूल जगना और अपने हाथों से उनकी अत्यन्त-संस्कार से प्रसन्न

दई सुगति सो हिय न दूष अति चरन छुए को पछिवाऊँ ॥
“शिला १११ सुवाप विगत भय, परमव पवन पाऊँ ।

विजय पत्रिका में स्पष्ट कराया है। देखिए :—
चरित्र की अनुपम शक्ति है। इसका विमर्शान गुलसीदासजी ने संगम है जो भगवान् राम के अवाधित शील एवं मूर्तिविशाल आनन्द के साथ चरण-स्पर्शजन्य प्रवृत्ति का शिवविशाल एवं पवन चरित्र की बहल ऊँची भूमिका है। यहाँ उपकारजन्य हैवय में गरी का चरण-स्पर्शजन्य प्रवृत्ति है, यह शील तरफ हँस का वातावरण है। लेकिन शीलसिन्धु श्रीराम के मंगलमयी वर्षा में मुँह का और-छोर भीग गया। चारों गथा। शिला साकार हो गई। चेतना और आनन्द की भगवान् श्रीराम के चरण-रज से अहिंसा का उद्धार हो

(श्रौरात्मविरचितामृत बालकाजी ११०)

चरन कमल रज चाहति, कृपा करहु रघुवीर ॥

“वीरव गति आपवसु, उपल देह परि धीर ।

सम अपने शील का अद्भुत प्रदर्शन करते हैं। देखिए :—

सुखी रामायण में आदि से अंत तक भगवान् राम के
 शीलमय उद्वेग वरिषों का काव्यमय दृष्टिरेखा है। इसी
 संदर्भ में उनकी कविपद्य चरित्रिक विशेषताओं का निर्देश
 करना उचित प्रतीत होता है। उनके दिव्य चरित्र में अपार
 करुणा के मंगलमय और सर्वत्र लहरते नभर आते हैं। शील
 की अक्षुण्ण प्रतिभा भगवान् श्रीराम अहिंसा के उद्धार के

वर्णनीय होती है।
 आदर्शित हो मर्यादा, धर्म तथा चरित्र की सारी विशेषताएं
 अथाव स माववता के गुण उद्भूत होती सकते हैं। शील के
 गुणों का केन्द्र "शील" की ही कक्षा जा सकता है। शील के
 उत्तम आवरण का वर्णन किया है। सप्रसन्न से सारे दिव्य
 "शील" के आदर्श विनम्रता, उत्तम स्वभाव, सर्ववर्ति तथा
 करुणा का विशेष उल्लेख किया है। अधिकांश संतोने
 महारामा गीर्वाण "शील" के आदर्शित रूप, धर्म और
 यथाशक्ति दान करना "शील" कहते हैं।

अभिष्ट न करना, सबके ऊपर ऊंचा भाव बनाये रखना और
 अर्थों, शरीर से, मन से और वचन से किसी जीव का
 अनुद्वेग दान व शीलमय प्रत्यक्ष है।

“अर्थः सर्वभूतैः कृपाया मनसा हि।

सं शील का स्वल्प उपस्थित किया गया है, देखिए :—
 “महाराज शील पर्व १२४, शीलविरूपणश्लोक”

“शीलविरूपः” कहा है।
 महर्षि वारमीक तथा सर्वप्रकार गुणशीलासजीव श्रीराम की
 कदाचार और दुर्धृष्टता से भी विमुक्त नहीं हो पाता इसीलिये
 प्रकार शील किसी भी विरोधी या शत्रु के भाँसे से भाँसी

श्रील का सरोवर, नील, नहर या नद सन्ती तथा
महेन्द्रगढ़ के चरित्र में वर्तमान जा सकता है, लेकिन भगवान्
में "श्रील का सरोवर" ही कहना ठीक है। यद्यपि उनकी
श्रीलवा अगाध, अनन्त होती है, अब उनकी श्रीलवा का
सापेक्ष या उपमा सागर से देना भी समुचित नहीं है। श्रील
के कठोर तप से सारे जलधारा भी सूख जाते हैं, किन्तु समुद्र
अर्थात्-का-र्यों और जल-का-तैसा ही बना रहता है, इसी

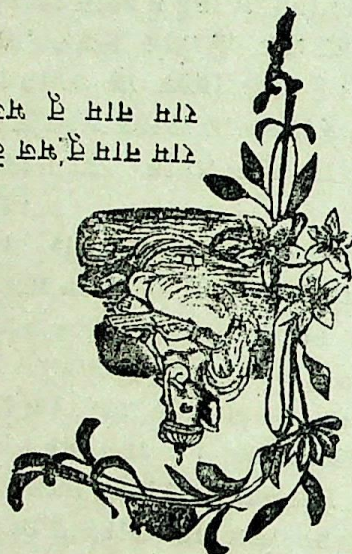
सबसे ऊँचा है।
श्रील का सरोवर, नील, नहर या नद सन्ती तथा
महेन्द्रगढ़ के चरित्र में वर्तमान जा सकता है, लेकिन भगवान्
में "श्रील का सरोवर" ही कहना ठीक है। यद्यपि उनकी
श्रीलवा अगाध, अनन्त होती है, अब उनकी श्रीलवा का
सापेक्ष या उपमा सागर से देना भी समुचित नहीं है। श्रील
के कठोर तप से सारे जलधारा भी सूख जाते हैं, किन्तु समुद्र
अर्थात्-का-र्यों और जल-का-तैसा ही बना रहता है, इसी
सबसे ऊँचा है।
श्रील का सरोवर, नील, नहर या नद सन्ती तथा
महेन्द्रगढ़ के चरित्र में वर्तमान जा सकता है, लेकिन भगवान्
में "श्रील का सरोवर" ही कहना ठीक है। यद्यपि उनकी
श्रीलवा अगाध, अनन्त होती है, अब उनकी श्रीलवा का
सापेक्ष या उपमा सागर से देना भी समुचित नहीं है। श्रील
के कठोर तप से सारे जलधारा भी सूख जाते हैं, किन्तु समुद्र
अर्थात्-का-र्यों और जल-का-तैसा ही बना रहता है, इसी
सबसे ऊँचा है।
श्रील का सरोवर, नील, नहर या नद सन्ती तथा
महेन्द्रगढ़ के चरित्र में वर्तमान जा सकता है, लेकिन भगवान्
में "श्रील का सरोवर" ही कहना ठीक है। यद्यपि उनकी
श्रीलवा अगाध, अनन्त होती है, अब उनकी श्रीलवा का
सापेक्ष या उपमा सागर से देना भी समुचित नहीं है। श्रील
के कठोर तप से सारे जलधारा भी सूख जाते हैं, किन्तु समुद्र
अर्थात्-का-र्यों और जल-का-तैसा ही बना रहता है, इसी
सबसे ऊँचा है।



श्रील का सरोवर

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥
 राम राम की जय है, जय है, जय है ॥

राम राम जे मजुआं,
 राम राम जे मजु जे रे ।



संसार में भगवान् श्रीराम की तरफ़ वेदमत, संवमत तथा
 लोकमत का पालन अवश्य ही करना चाहिये । उनके समान
 चरित्र द्वारा धर्म की शिक्षा देने वाला कौन है ? धर्म का
 पालन करने में कठिनाईयाँ तो आती ही हैं, किन्तु उन
 कठिनाईयाँ से विचलित नहीं होना चाहिये ।

(५५)

इस प्रकार सभी रामायणों में भगवान् श्रीराम की आदर्श गर-वीरा का ही उल्लेख है। उनके बारे में विश्व से आदर्श धर्म की व्याख्या स्पष्ट होती है। हम लोगों की भी

गुह्यता भी भगवान् अवतर रहे।”

राम ने धर्म का पालन करने के लिए गुह्यता के लिए कहा कि या है। उसे, उसका निराकरण करना मनुष्य का स्वभाव धर्म है। पर ध्यान देना उचित ही था। लोक में प्रिय करना से निराशा सीता से कहा—“बेटा ! मेरे पुत्र की धमा करी। लोकमत उल्लेख रामकी अपने अंक में भरकर प्यार किया। उल्लेख उसी समय स्वर्ग से राजा दशरथ बड़े पर उतर आये।

सकल होकर पार निकल गई ही।”

कई वचन सुनाकर गुह्य दुःखी किया। वृष पत्नीया में सहने लगी थी। लोकप्रवाद की दूर करने के विचार से गुह्य श्री-शक्ति जानवा था। गुह्यता पवित्रता पर मुझे स्वीकार किया, अपने पास बिछाया और बोले—“प्रिय ! मैं राम ने अब सीताकी बड़े प्यार से दोनों होथों में

देवी सीता की श्रीराम के होथों में समर्पण कर दिया।

बड़े आए और सब प्रकार क वस्त्र और आभूषणों से विभूषित उसी समय बड़े एक समरकार हुआ। अग्निदेव सशरीर

मनुष्यता की विशेषता जाननी चाहिए।”

का ज्ञान लड़ी, वह निरदनीय है। मनुष्य वन पाकर उसे का वास्तविक धर्म निभाता जानता हूँ। जिस मनुष्य-धर्म श्रीराम ने शत्रुदेव से कहा—मैं तो मनुष्य हूँ। मनुष्य

जगदम्बा है, महालक्ष्मी है।”

लिए अपने पूर्य पर अवतार लिया। देवी सीता तो साक्षात्

दोनो नही थी। आँखों से आग की विजगदियाँ निकल
 रही थी। बोली—“देव ! आपके मुँह से ऐसी बातें सुनने
 की मुझे आशा न थी। आपके वचनों से मेरे हृदय के टुकड़े-
 टुकड़े हो गए। एक सामान्य मनुष्य के समान आप बोल
 पड़े। क्या आप नहीं जानते कि राक्षसों में मुझे जबरदस्ती
 उठा लाया था ? कोय के कारण आपको विवेक बुद्धि मर
 हो गई लगती है। मेरे साथ ! क्या यह आप भूल गए कि
 मैं किस कुल की हूँ ? याद रखिए, मेरे पिता राजा जनक
 हैं। उनके पास ही मैं बड़ी हुई हूँ। उनसे मैंने धर्म सीखा
 है। लक्ष्मण ! जल्दी से अग्नि जलाओ।”
 लक्ष्मण की इस समय प्रभुत्व पर अचल कोय आ रहा
 था। सीताने जब आदेश दिया कि आग जलाओ, तो
 लक्ष्मणने राजकी ओर देखा।
 प्रभुत्वराज के मुख पर तनाव के छाने पड़ने का चिह्न
 दिखाई नहीं दिया। उन्होंने लक्ष्मण की मना नहीं किया।
 सीताने आपसे लक्ष्मणने अग्नि प्रज्वलित की। सीता
 ने किसी की भी ओर नहीं देखा। भूमि पर दृष्टि किए
 अपने पति की प्रदक्षिणा की। उनकी नमस्कार किया और
 बोली—“दे देवतागण ! आपको मेरी नमस्कार है। दे
 महर्षिगण ! आप सबकी नमस्कार है। हे अग्निदेव !
 आपकी मेरी प्रविशता पर सदैव नज़रें करो है न ! कृपया
 आप मुझे आश्वस्य दें।”
 इतना कहकर सीताने अग्निज्वाला में प्रवेश कर गई।
 रत्नों के साथ देवता नहीं रुकते हो गए। ब्रह्मर्षि राज
 से कहते—“हे गौरागण, हे प्रभो, राजा का संहार करने के

आ रही है तो उनके दर्शनों के लिए भीड़ लग गई, और मन्त्रों
 लगा। सीताजी पालकी में आ रही है। बानर-बेवाओं ने
 भीड़ को हटाया और शान्ति करायी। भगवान् राम ने कहा—
 “इन्हें मत हटाओ, ये सब मेरे मित्र हैं। इन्हीं की सहायता
 से तो मैंने युद्ध जीता है। सीता पालकी से निकलकर प्रसन्न
 हो गईं आये। उन्हें देखकर मेरे सभी मित्र बन्दर प्रसन्न
 होये।”
 बानरों तथा लक्ष्मण को श्रीराम के व्यवहार में कुछ
 विचित्रता लगी। उनकी समझ में कोई बात नहीं आयी।
 सीताजी पालकी से उतर पड़ीं। नीचा फिर किए सीधे
 अपने स्वामी के पास पहुँचीं। उन्हें ने केवल इतना ही कहा—
 “आयुक्त।” आगे उनसे कुछ बोला न गया और फट-फूटकर
 रोने लगीं।
 श्रीराम बोले—अब मारा गया। तुम्हें मैंने कारागार
 से मुक्त कर दिया। मेरी शक्ति धर्म पूरा हुआ। मैंने जो
 पण किया था, वह भी पूर्ण हुआ। मैंने तुम्हारे कारागार
 भंगकर युद्ध नहीं किया। मैंने तो अपना कर्तव्य पूरा किया।
 तुम्हें पाकर मुझे खुशी नहीं हो रही है। लोकपाल के धर्म
 से मुम छुड़ रहे हो। बोलो, अब तुम क्या करना और
 करना चाहती हो? मेरे साथ अब तुम्हारा रहना अशक्य
 है। अपने किसी संबंधी अथवा मित्र की रक्षा में मैं तुम्हें
 साथ सकता हूँ। परन्तु घर में बहुत समय तक रह चुकी हो।
 ऐसी स्थिति में तुम्हें स्वीकार करना मेरे लिए उचित नहीं
 है। तुम क्या कहती हो? तुम्हारी इच्छा क्या है?”
 सीता ने राम की ओर देखा। उनकी आँखों में आँसू

समर्पित के बाद सारे बाहरों से जब मुनी कि सीता माता
कावन रामायण के अंतर्गत ऐसी बर्षा है कि युद्ध की
सब को सब विधाया है तथा आर्य हो है ।

कारण है । श्रीराम की अवतार और कथा अतः है लेकिन
सुंदर रूप से अलग-अलग दंग से की गई है, इसके अन्त
पद्यों और प्रयोगों की बर्षा अलग-अलग रामायण में
है जिसे प्रस्तुत करता उचित जान पड़ता है । मित्र-मित्र
कवन रामायण में इसके प्रयोग में अत्यंत सुंदर बर्षा की गई
तथा धर्म की रक्षा है मित्र-मित्र रूप में बर्षा की गई है ।
है, लेकिन मित्र-मित्र रामायणों में लोकमत के पालन में
हो । यह बर्षा ही वास्तविक रामायण के आधार पर की गई
रामायण बर्षा कि लोकमत का पालन है मनुष्य की करता
इस प्रकार लोकमत का पालन कर भगवान्
में प्रणाम कर सीताजी विषादमुक्त हुई ।

महर्षि का यह सार्वजनिक-पूर्ण कथन सुनकर उनके चरणों
विषाद न करो ।”
करोगे । तुम अपने ही घर में आइ हो, ऐसा समझकर
दिखाई रहती है, वे अपनी बेटी को सर्वथा गुंझाया पालन
पास रहे । मेरे आश्रम के निकट तपस्या में संलग्न कुछ
होता दिव्य दृष्टि से जानता हूँ । तुम निश्चय ही मेरे
आ । गुंझाये परिवर्तन का जो कारण है, उसे मैं तपस्या
पढ़ी के लिए प्रस्ताव किया, वही मुझे इसका पता लग गया
राजा जनक की पुत्री हो । गुंझाया स्थापित है । जब तुमने
पुत्रवधू, महाराज श्रीरामकी प्यारी पत्नी और मिथिला के
सुंदर बाली में कहा—“पतिव्रते ! तुम राजा दशरथ की

बुकी है, तथापि महाराजने लोक निराशा के भय से आपकी
 रचना किया है। देवी ! अब महाराज की आशा मानकर
 और आपकी श्रद्धाओं के दर्शन करने की इच्छा समझकर मैं
 श्रद्धा-आश्रमों के पास आपकी छवि देखूँगा, अपने सब
 किया है। अब उन्होंने का समरण करने से आपको परम
 करपाण होगा, इसलिए आप विषाद न करें।”

लक्ष्मणजी के ये कठोर वचन सुनकर जनककिशोरी सीता
 मुँछित हो पृथ्वी पर गिर पड़ी। उनके नेत्रों से आँसुओं की
 धारा बहे रही थी। उन्होंने दीन बाणी में लक्ष्मण से कहा—
 “निश्चय ही विद्यावाते मुझे केवल दुःख योगों के लिए पैदा
 किया है। इसीलिए आज सारे दुःखों का समूह मुँचिमान
 होकर मुझे दर्शन देने आया है। मैंने पूर्व-जन्म में कौन-सा
 पाप किया था, जिसके फलस्वरूप महाराजने मुझे रोग दिया
 है ? मुमियानन्दन ! तुम तो बड़ी करीबनी महाराजने मुझे
 आशा दी है। महाराज के चरणों में मेरी सादर प्रणाम कर
 देना और यह संदेश सुना देना—“महाराज ने मुझे अपयश के
 भय से ही रोगा है, उसे दूर करना मेरा भी कर्तव्य है,
 क्षयिक वे मेरे परम आश्रय हैं। स्त्री के लिए तो पति ही
 देवता, पति ही आश्रय और पति ही युव है, अब प्रणामों की
 प्रणाम कर भी उनकी इच्छा पूरी कलूँगी।”

सीताजी के इस प्रकार कहने पर लक्ष्मण ने दुःखी होकर
 उन्हें प्रणाम किया और अपने अवस्था में अयोध्यापुत्री लीला
 आए। उन्हें सीता खड़ी रो रही थी, बहों से आँसुं हो रही
 पर श्रद्धाओं के बालक खड़े थे। उन मुनिकुमारोंने यह
 संवाद महर्षि वारमीक को दिया। वारमीकने बहों पर बकर

देवय सबल हो उठा है। यद्यपि आप मेरे सामने निर्दोष हो
 भयकर, अफवाह फैली हुई है, उसे भुनकर श्रीरामजी का
 होकर बोल—“जनकनिधि ! नगर में आपके विषय में जो
 बिदेसनिधि के इस प्रकार फैल कर रहे पर लक्ष्मण दुःखी
 सदाप यहाँ हो रहा है, मुझे सब-सब बताओ।

तो है न ? गुह्यार मन् रवरेय यहाँ नहीं है ? वृक्ष इतना
 नहीं पा रही हैं। मुझे ठीक-ठीक बताओ महाराज कुशल से
 जनककुमारी ने कहा—“क्या बात है ! मैं कुछ समझ
 धरती पर फिर पड़े और मृत्यु का आश्रित करने लगे।

जाती तो मेरा परम करग्राम होता। ऐसा कहकर लक्ष्मण
 युग में मेरी निन्दा होती। इसके पहले ही यदि मेरी मौत हो
 गई है कि श्रीराम ने जो काम मुझे सौंपा है, उसके कारण युग-
 सीता से दोगा जोड़कर कहे—“मेरे देवय में सबसे बड़ा दुःख
 लक्ष्मण से न भरे आँसुओं से लक्ष्मणजी ने मिथिलेशकुमारी
 अभिषेक कर देमलोग पुनः अयोध्या लौट चले।”

करने की क्या आवश्यकता है ? उन महर्षियों का यथा-योग्य
 ऋणियों के आश्रमों में समन करने आइ हैं, फिर पुनः विचारा
 उनकी विचारा का कारण पूछा और कहा—“मैं तो स्वेच्छा से
 लक्ष्मण की शोक से विज्ञेय देखकर धर्मस्य सीताजी ने
 लक्ष्मण दुःखी हो फट-फटकर रोने लगे।

दूसरे दिन दोपहर के समय भागीरथी की जलधारा को पारकर
 देखकर वे देवताओं की आराधना मन-ही-मन करने लगी।
 उनका मन विफल और अधीर था। इन सब अपशकुनों की
 दृष्टिनी आँख फड़कने लगी। शरीर में कंपन हो रहा था।
 कर दी। मार्ग में सीताजी की अपशकुन दिखायी दिए। उनकी
 के लिए बेचार हो गई। अब दोनों ने वन की यात्रा आरम्भ

नीचीं भाइयोंने आकर उनके घरलकमलों में संधि प्रणाम किया ।

भगवान् रामने सबका आतिथ्यकर कहा—“तुमलोग मेरे सर्वस्व और जीवन हो । तुमलोगों द्वारा ही मैं इस विशाल राज्यका पालन करता हूँ । तुमलोग सभी शास्त्रों के ज्ञाता और कल'व्य का पालन करनेवाले हो । इस समय मेरे और सीता के प्रति अनपद में अफवाह फैली हुई है जो मेरे मर्मस्पर्शन की विदीर्ण कर रही है । मैंने और सीताने महारामाओं के कुल में जन्म लिया है, अब यह निर्वा मेरे द्वेष की व्यथित कर रही है । जिस प्रणी की अपकीर्ति लोक में होती है, वह अधम लोक में फिर जाता है । मैं लोक विद्वा के धर्म से प्रणी की भी त्याग सकता हूँ । सीता की त्यागना हुंकर नहीं है । मैं श्रीक-सगर में डूबा हुआ हूँ, अब लक्ष्मण ! तुम कम सबेरे सीता की रथ पर चढ़ाकर राज्य की सीमा के बाहर महारामा वास्तविक मुनि के आश्रम में छिड़ आओ । मेरी इस आज्ञा का पालन करो । सीता सीताने पहले मुझसे कहा था कि मैं श्रुतियों के आश्रम देखना चाहती हूँ । इसलिए उनकी यह इच्छा भी पूर्ण हो जायगी ।”

ऐसा कह श्रीराम के नेत्रों में आँसू भर आए और वे श्रीक-सगर में डूब गए । लक्ष्मणने दुःखी मन से सुमन की रथ लाते की कहा । रथ आने के पश्चात् वे राजमहल में जाकर सीता सीता से बोले—“मैं आपकी महाराम की आज्ञा से गंगा-तट पर श्रुतियों के आश्रम पर ले चलूँगा ।”

महारामा लक्ष्मण के वचन से सीताने हँसते ही वन-गमन

विद की भाषा श्रीम हो रही थी। उसी अवस्था में उनके हो रहा था। उनके दोनों ने जो मैं और मुखा-का मुख उदास और संयत्काल के युद्ध की भाँति प्रभा-शून्य के बारे में कुछ अवधारणाएँ फैलायीं। उस समय भगवान् राम सकते हैं। कुछ कठिन समस्याएँ ने सभी साक्षी माँ सीता जान सकता है? वे अपने संकल्प के द्वारा सब कुछ कर भगवान् की लीला अदभुत है। इसे ठीक-ठीक कौन

किया जिसे भगवान् ने स्वीकार कर लिया। दर्शन करने के लिए भगवान् रामके सामने प्रस्ताव प्रस्तुत दिखाई दिए। माँ सीताने पुनः तर्कावन और महारामाओं का पश्चात् सीता में मंगलमय हृदय बर्ताने वाले गर्भ के विना के अतिसार धार्मिक कृत्य और देवपूजा करते थे। कुछ समय धर्म-पूर्वक प्रजा का पालन किया करते थे। वे निरन्तर धर्म और राम सीता के साथ राज्य सिंहासन पर बैठकर

मंगलमय आदर्श प्रस्तुत किया है। सम-व्यवहार है। भगवान् रामने इसका पालनकर अत्यन्त सनातन धर्म का सिंहासन लोकमत, वेदमत तथा सार्वमत का चढ़ाते लोकमत का कभी खड्ग नही किया। इसीसे उनके गुणों की अमिट कथाएँ हैं। सर्वसमर्थ होने हुए भी भगवान् राम के गुण अपार, अगाध एवं अनन्त हैं।



श्रीराम पाठक श्रीराम

(ॐ नमो भगवते वासुदेवाय)

॥ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम् भगवत्पाठं ।
चक्षुर्भोग्यं प्राप्नुयाम् ।

I like the way you have written the letter.

[illegible]

हो बलान कहा जा सकता है।
 भगवान ने भक्तों के निमित्त ही राम रूप में धरती पर
 किया और तदनुसार पवित्र चरित्र किया उनके सब चरित्र
 द्रवने मयविन थे कि चरममूर्ति आदि श्रेष्ठियों रामको
 अवतार के अतिरिक्त "मयविपुलवर्ण राम" कहते थे। सब
 श्रुतिस्मृतियों में "श्रीरामचरितमानस" में राम की साक्षात्
 अवतार ही कहा है। उनके अद्भुत चरित्रों की वृत्तें हैं
 उन्हे अवतार मानना ही मयावृत्ति है। राम के अवतार की

सिद्ध किया है। सारे भक्तिशास्त्र मुनिसाहस्रके संग्रहमय उच्चतम विचार को एक स्वर से गूँट कर रहे हैं। यह सारा पूर्ण सत्य है, परम सत्य है कि भक्ति जैसा रसमय कोई भी साधन नहीं है। भक्ति में भी नाम साधना सर्वोपरि है और भक्तिसाहित्य में यह नाम साधना "साधन-समाप्त" के रूप में घोषित किया जाता है। मुनिसाहित्य की आरंभ नाम-साधना ही है। यदि कोई नाम का चरित्र जानना चाहे तो सबसे पहले नाम नाम की साधना करना अनिवार्य है, यह मुनिसाहित्य की घोषणा की है। भक्ति सर्वगुर्वती है। नाम भक्ति और नामनाम की साधना की विशेष चर्या आती है।

अधिकाधिक प्रयत्न किया है और धर्म का प्रामाण्य बर्धन किया है। श्रीराम की सर्वत्र प्रगति के लिए मैं प्रतिपादित करने का काम किया है। किन्तु तुलसीदास ने अपने युग के अनेक वारंशीक ने धर्म की व्याख्या के लिए मैं श्रीराम की चरित्र किया, वह सब कुछ धर्म का सच्चा स्वरूप ही है। इस प्रकार सभी का एकमात्र उदाहरण स्वामी है। श्रीराम ने जो है। धर्म की निवर्तनी भी सूर्य व्याख्या ही सकती है, उन को दिखाया है। उनके अनुसार श्रीराम धर्मविग्रह के स्वरूप वारंशीक ने श्रीराम के चरित्र द्वारा धर्म के जंगम स्वरूप रूप की उजागर किया है।

है, लेकिन तुलसीदास ने प्रगति करने के अनेक उदाहरणों के प्रकार वारंशीक ने राम की साधारणता के रूप में प्रस्तुत किया चरित्र अपनाकर प्रगति की वरुण प्रत्यक्ष वन सकता है। इस यह सिद्ध किया है कि कोई भी मनुष्य राम की वरुण आवरण, वारंशीक ने श्रीराम की महामानव के रूप में अधिकतर

प्रमुख विषय राम प्रगति ॥

“एहि महि आदि मध्य प्रगति ॥

प्रतः—

“इह देव मम राजक राम”

देखिए—

प्रगति करने मनुष्य के बीच में राम की गता है किन्तु तुलसीदास ने प्रगति राम की मनुष्य बनने का प्रयास किया है। दूसरे शब्दों में कहना यह है कि वारंशीक के श्रीराम मनुष्य पड़ते हैं और बाद में अपने चरित्र, गुण के द्वारा प्रगति बनते हैं। तुलसीदास के श्रीराम इह प्रगति हैं।

“चरित विनय रत्नामक, याद कि पावड़ कोहै”

देखिए—

संगीत जो धरती पर हो रहा है, वह स्वर्गवासियों को मुग्ध कर रहा है। बडसबध कहता है कि स्काईलाक का संगीत स्वर्ग का ही मधुर संगीत है जो धरतीवालों को आश्चर्यमय दंग से आत्मापिब कर रहा है। महर्षि वाल्मीकि का श्रीराम-चरित वर्णन साहित्यिकों ने भोली की भाँति कहा है और सन्त-शिरोमणि श्रीवसोदासजी का भगवान् श्रीराम का चरित्र-वर्णन बडसबध की तरह अनुपम कहा है।

वालमीकि के श्रीराम धरती के पुत्र हैं और अपने शील, सद्गुणों के द्वारा स्वर्ग के देवताओं के दण्डदेव के रूप में समस्त एवं बख बाँधित किये जाते हैं। तुलसीदासजी के श्रीराम साक्षात् पूर्णब्रह्म, परब्रह्म परमेश्वर हैं जो अपने मुकुल शील तथा अनन्त कल्याण के द्वारा धरती वालों को धन्य तथा कल्याण करने के लिए ही अवतरित हुए हैं। सारांश यह है कि वाल्मीकि के श्रीराम अपने उच्च मानवीय शील, गुण के कारण भगवान् कहे जाते हैं जो विष, धेनु सुर, सन्त हेतु अवतरित हुए हैं—‘विष धेनु सुर सन्त हित, लीन्ह मनुज अवतार’ दोनों भारतीय ऋषि महान् हैं। दोनों के भाव और लक्ष्य अति महान् हैं। मानव-कल्याण दोनों के लक्ष्य है। एक श्रीराम व आदर्श चरित्र अपनाने की शिक्षा देते हैं और दूसरे उनकी भक्ति करने की शिक्षा देते हैं। दोनों का कहना सत्य है। दोनों की निराला करुणामयी है।

वालमीकि के श्रीराम के शील, गुण मानवीय धरातल पर निश्चय ही अनुकरणीय हैं, लेकिन तुलसीदास के भगवान् राम के शील, गुण-असाधारण हैं जो केवल समझ ही जा सकते हैं

आराम के चरित्र का संदेश वास्तविक और वैयक्तिक
का वैसा ही है वैसा कवि बोली और बर्तव्य का है।
रकाई-लार्क के संगीत के वर्णन और दृष्टिकोण का वास्तव्य
वैसा ही उनका है वैसा दृष्टिकोण का वास्तव्य इन दो
भारतीय महर्षियों का है। बोली कहता है कि रकाई-लार्क का

उन्होंने के चरित्र में पायी जा सकती है।
तो मेरे वैसा मूल कोन होगा ?" यह अनुपम शील की धार्मिकी
प्रबल उच्छ्वा है। यदि अपना और दूसरों का कल्याण न करे
होगा। मेरे परम प्यारे परम की राज्य मिले, यह मेरी
करने का लाभ तथा उनके संस्कार से विवेक का लाभ प्राप्त
सबों का कल्याण है। वन में श्रद्धा, मुनियों की सेवा
का पालन करने वाला है। वन में मेरे जाने से मेरी भी तथा
"माताजी ! बड़ी पुत्र बड़यागी है जो माता पिता के वचनों
देखा जा सकता है :—वे अपनी माता कौशल्या से कहते हैं—
जाते हैं तो उस समय उनके भाव कितने ऊँचे तथा आदर्श हैं,
वगमन के लिए जब वे अपनी माता से आशा माँगे

स्वाभाव पूर्ण पीतल, प्रभु बैठन कहें दीर्घ ॥
"देखिए राम मुनि आगत, हृदि दलवत कोट ॥

कितना अधिक आदरभाव है, देखा जाए :—
हैं। गुरुजनों, श्रद्धाओं एवं मुनियों के प्रति श्रीरामजी में
करते हैं और उन्हें बैठने के लिए अपना पीतांबर बिछा देते
पुत्र गारुडी की भाँति देखकर श्रीराम साष्टांग प्रणाम
जयमाला स्वीकार कर ले।

दिलिया कि माता पिता की आशा ही वही है जब उन्होंने
मर्षिता की बात उन्हें याद है। जब विश्वामित्र ने पूर्ण विश्राम

मार्ग-विशेष की आज्ञा विवक्षित नहीं कर सकता।" यह
 सोचते हैं कि "गुरुजी की आज्ञा से धर्म ही बचता है, लेकिन
 पड़ोसियों को बचाने के लिए वे अपना धर्म नहीं छोड़ेंगे। वे
 तत्परता से उसे बचाने हैं। अब सोचिए कि उन्हें क्या करना
 चाहिए, अब: उन्हें ही धर्म की रक्षा करने है और
 के निकट आते हैं। धर्मधर्म के प्रति उनके मन में प्रेम
 गुरु विषयों की साक्षात् प्रमाण करने के उपरान्त धर्म
 श्रीराम की हरे किम्वदन्ति दीखती है। वे अपने
 देते हैं।

हरेण करने हेतु श्रीराम की धर्म रक्षा की आज्ञा
 की शक्त दीख पड़ती है तो महर्षि विषयों की रक्षा सेना
 नहीं बच पाता है और जनता के मुखमंडल पर निर्यात
 अवश्य ही मिलती है कि श्रीराम के स्वयंवर में जब कोई धर्म
 मर्दाना अवश्य दीखती है। अनेक रामायणों में ऐसी चर्चा
 प्रयोजिता की जाती है। अब: उनकी प्रत्येक लीला में
 मर्दाना की शिक्षा देना श्रीराम के अवतार की मुख्य
 शीर्षकों में भी विचार किया जायगा।

यही उनकी मर्दाना पर विचार किया गया है और आगे के
 शीर्षक में हरे राम मर्दाना की दृष्टि से ही स्पष्ट है। पहले
 मर्दाना की विशेषता का उल्लेख किया गया है, लेकिन हम
 मर्दाना का विचार है। यहाँ से प्रमाण प्रस्तुत है श्रीराम की
 पूर्ण आचरण का उद्देश्य है। भारतीय संस्कृति का आधार
 सामान्य लोगों की मर्दाना की शिक्षा देना ही उनके मर्दाना-
 धर्म का लक्ष्य है। उसमें यह स्पष्ट पड़ने की प्रतीति है कि
 "आत्म-दर्शन" में उनकी संपूर्ण विनम्रता का वर्णन ही
 मर्दाना की सच्चे ज्ञान का प्रकाश नहीं मिल पाता।

साकार करके न दिखाने की सामान्य तथा अनपेक्षित
 यदि वे जीवन् के उदात्त मूर्तों की प्रत्यक्ष आचरण द्वारा
 मयदापूर्ण चरित्र, आचरण की ओर देखकर सीख सकते हैं।
 से इस विवर्ण सीख सकते हैं, उससे अधिक उनके मयदा
 धर्म की स्थापना में मयदा प्रयत्न है। उनके उपदेशों
 हैं। आप ही वाक्य कहते हैं।

कहते हैं—“हैं मयदापूर्ण, तम राम ! आप ही पूर्ण परमात्मा
 में देवता गारुडजी मयदापूर्ण तम राम की स्तुति करते हैं
 प्रत्येक कार्य की मयदापूर्ण कहते हैं। रामस्वरूप ७४-७५
 श्रीराम की मयदा २२ अर्थात् प्रकाश ज्ञान है। उनके
 “रामस्वरूप” में देवता गारुडजी मयदापूर्ण तम
 हैं।

रावण मरता है। रामायण में मयदा का पालन अनिवार्य
 में रहता है। मयदापूर्ण चरित्र अपनाने से ही इदम का
 बड़े भक्ति मही है। शानी भक्त बही है जो धर्म की मयदा
 सच्चा भक्त मही है। भक्ति धर्म की मयदा के विरुद्ध हो तो
 भक्ति करे, लेकिन धर्म की मयदा का पालन न करे तो वह
 है, उन्हीं की भक्ति का रंग लगता है। मानव भगवान की
 कथन है—“जो चरित्र और धर्म की मयदा का पालन करते
 निष्ठा देखे वाले अवतारों में एक राम ही है। उनका स्वरूप
 कहते हैं। उनका कहना है कि मयदापूर्ण चरित्र निम्न की
 अन्त तक श्रीराम की मयदा-स्थापना की ही धर्म-स्थापना
 “वैराग्य रामायण” में श्रीहनुमान् महाराज आदि से
 तथा सारे दिव्य गुणों के धाम हैं।”

श्रीराम में श्रीराम ही वैदिक मूर्तों के एकमात्र संस्कारक
 और आदर्शों के प्रथमदर्शक हैं। वे परम पुरुष पुरुषोत्तम हैं

“मयदागुच्छेत्तम भगवान् श्रीराम को भद्रं भव अय
सभी अवतारों की अवस्था विशेष महत्त्व रखता है। उन्हें सभी
आदर्शों का खजाना कहा जाय तो यह अत्युक्ति नहीं है। वे
हो एकमात्र मानव-जात के परमादर्श हैं। वे मानवता के
उद्गम का दिग्गज हैं। वे एक साथ ही आदर्श सञ्चाल,
आदर्श शासक, आदर्श राजा, आदर्श गुरु, आदर्श स्वामी,
आदर्श पति, आदर्श पुत्र, आदर्श गुरु, आदर्श पिता, आदर्श
आदर्श मित्र और आदर्श भक्त भी हैं। मानवीय मयदागुच्छेत्तम
बाल सञ्चाल, राजा, गुरु, मित्र, पिता, पुत्र, मित्र आदि सभी श्रीराम
को अपना आदर्श बनाकर परम पद को प्राप्त कर सकते हैं।

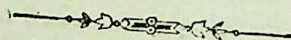
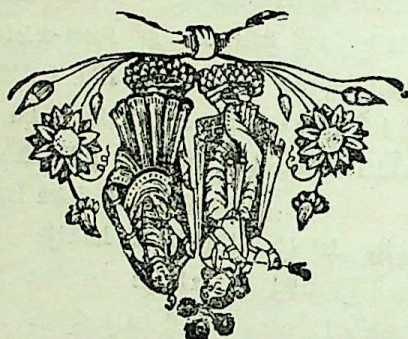
—: 1256 1257 1258 1259 1260 1261 1262 1263 1264 1265 1266 1267 1268 1269 1270 1271 1272 1273 1274 1275 1276 1277 1278 1279 1280 1281 1282 1283 1284 1285 1286 1287 1288 1289 1290 1291 1292 1293 1294 1295 1296 1297 1298 1299 1300 1301 1302 1303 1304 1305 1306 1307 1308 1309 1310 1311 1312 1313 1314 1315 1316 1317 1318 1319 1320 1321 1322 1323 1324 1325 1326 1327 1328 1329 1330 1331 1332 1333 1334 1335 1336 1337 1338 1339 1340 1341 1342 1343 1344 1345 1346 1347 1348 1349 1350 1351 1352 1353 1354 1355 1356 1357 1358 1359 1360 1361 1362 1363 1364 1365 1366 1367 1368 1369 1370 1371 1372 1373 1374 1375 1376 1377 1378 1379 1380 1381 1382 1383 1384 1385 1386 1387 1388 1389 1390 1391 1392 1393 1394 1395 1396 1397 1398 1399 1400 1401 1402 1403 1404 1405 1406 1407 1408 1409 1410 1411 1412 1413 1414 1415 1416 1417 1418 1419 1420 1421 1422 1423 1424 1425 1426 1427 1428 1429 1430 1431 1432 1433 1434 1435 1436 1437 1438 1439 1440 1441 1442 1443 1444 1445 1446 1447 1448 1449 1450 1451 1452 1453 1454 1455 1456 1457 1458 1459 1460 1461 1462 1463 1464 1465 1466 1467 1468 1469 1470 1471 1472 1473 1474 1475 1476 1477 1478 1479 1480 1481 1482 1483 1484 1485 1486 1487 1488 1489 1490 1491 1492 1493 1494 1495 1496 1497 1498 1499 1500 1501 1502 1503 1504 1505 1506 1507 1508 1509 1510 1511 1512 1513 1514 1515 1516 1517 1518 1519 1520 1521 1522 1523 1524 1525 1526 1527 1528 1529 1530 1531 1532 1533 1534 1535 1536 1537 1538 1539 1540 1541 1542 1543 1544 1545 1546 1547 1548 1549 1550 1551 1552 1553 1554 1555 1556 1557 1558 1559 1560 1561 1562 1563 1564 1565 1566 1567 1568 1569 1570 1571 1572 1573 1574 1575 1576 1577 1578 1579 1580 1581 1582 1583 1584 1585 1586 1587 1588 1589 1590 1591 1592 1593 1594 1595 1596 1597 1598 1599 1600 1601 1602 1603 1604 1605 1606 1607 1608 1609 1610 1611 1612 1613 1614 1615 1616 1617 1618 1619 1620 1621 1622 1623 1624 1625 1626 1627 1628 1629 1630 1631 1632 1633 1634 1635 1636 1637 1638 1639 1640 1641 1642 1643 1644 1645 1646 1647 1648 1649 1650 1651 1652 1653 1654 1655 1656 1657 1658 1659 1660 1661 1662 1663 1664 1665 1666 1667 1668 1669 1670 1671 1672 1673 1674 1675 1676 1677 1678 1679 1680 1681 1682 1683 1684 1685 1686 1687 1688 1689 1690 1691 1692 1693 1694 1695 1696 1697 1698 1699 1700 1701 1702 1703 1704 1705 1706 1707 1708 1709 1710 1711 1712 1713 1714 1715 1716 1717 1718 1719 1720 1721 1722 1723 1724 1725 1726 1727 1728 1729 1730 1731 1732 1733 1734 1735 1736 1737 1738 1739 1740 1741 1742 1743 1744 1745 1746 1747 1748 1749 1750 1751 1752 1753 1754 1755 1756 1757 1758 1759 1760 1761 1762 1763 1764 1765 1766 1767 1768 1769 1770 1771 1772 1773 1774 1775 1776 1777 1778 1779 1780 1781 1782 1783 1784 1785 1786 1787 1788 1789 1790 1791 1792 1793 1794 1795 1796 1797 1798 1799 1800 1801 1802 1803 1804 1805 1806 1807 1808 1809 1810 1811 1812 1813 1814 1815 1816 1817 1818 1819 1820 1821 1822 1823 1824 1825 1826 1827 1828 1829 1830 1831 1832 1833 1834 1835 1836 1837 1838 1839 1840 1841 1842 1843 1844 1845 1846 1847 1848 1849 1850 1851 1852 1853 1854 1855 1856 1857 1858 1859 1860 1861 1862 1863 1864 1865 1866 1867 1868 1869 1870 1871 1872 1873 1874 1875 1876 1877 1878 1879 1880 1881 1882 1883 1884 1885 1886 1887 1888 1889 1890 1891 1892 1893 1894 1895 1896 1897 1898 1899 1900 1901 1902 1903 1904 1905 1906 1907 1908 1909 1910 1911 1912 1913 1914 1915 1916 1917 1918 1919 1920 1921 1922 1923 1924 1925 1926 1927 1928 1929 1930 1931 1932 1933 1934 1935 1936 1937 1938 1939 1940 1941 1942 1943 1944 1945 1946 1947 1948 1949 1950 1951 1952 1953 1954 1955 1956 1957 1958 1959 1960 1961 1962 1963 1964 1965 1966 1967 1968 1969 1970 1971 1972 1973 1974 1975 1976 1977 1978 1979 1980 1981 1982 1983 1984 1985 1986 1987 1988 1989 1990 1991 1992 1993 1994 1995 1996 1997 1998 1999 2000 2001 2002 2003 2004 2005 2006 2007 2008 2009 2010 2011 2012 2013 2014 2015 2016 2017 2018 2019 2020 2021 2022 2023 2024 2025 2026 2027 2028 2029 2030 2031 2032 2033 2034 2035 2036 2037 2038 2039 2040 2041 2042 2043 2044 2045 2046 2047 2048 2049 2050 2051 2052 2053 2054 2055 2056 2057 2058 2059 2060 2061 2062 2063 2064 2065 2066 2067 2068 2069 2070 2071 2072 2073 2

महर्षि वारम्भिकने अपनी रामायण में श्रीरामके आदर्श
चरित्रों का गुणगान कर यह अवश्य ही सिद्ध कर दिया है कि
वे महाविद्वत्कृतज्ञानमय हैं। वारम्भिक रामायण ३।१।१७३ में
महर्षि ने स्पष्ट कहा है—“हे श्रीराम ! आप पुराण कृतज्ञानम
य हैं, महाविद्वान् करने के लिए ही आपने अवतार
ग्रहण किया है। जो लोग आपमें शक्ति रखते, वे इस लोक
और परलोक में अपने सभी मनोरथ प्राप्त कर लेंगे।” यह
श्री भगवान् यह रखते योग्य है कि “महाविद्वत्कृतज्ञानम” का
विशेषण सिर्फ भगवान् श्रीराम के लिए ही है। रामायणी
विवेकानन्दजीने श्रीराम के महाविद्वत्कृतज्ञानम” विशेषण पर



ዘገረገረ ዘገረገረኝ

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥



मणिलक्ष्मी, माधुर्यसमापार दुलहा श्रीराम की जय ।

करके अपने आश्रम की लौट गए ।
दिन रहकर महाराज दशरथ का स्वामी-संस्कार स्वीकार
महर्षि विश्वामित्रजी साथ ही अग्रज आन और कुल

परमानन्द मगन महाराज ॥

“अष्टमं सप्तमं दशमं वारं ।

महाराज जनकने अपनी छोटी पुत्री उषिमा का विवाह
लक्ष्मणजी से कर दिया तथा अपने भाई की कन्या माण्डवी
का विवाह भरतजी से और अति कीर्ति का विवाह शर्जुनजी
से कर दिया। बधुओं के साथ अपने पुत्रों की देखकर सभी
माताएँ परमानन्द में मग्न हो गईं। पुत्रपौत्रासजीने लिखा है—

“देव विदित अरु कुल आचार।
कीन्ह भली विधि सब व्यवहार॥”

देखने के लिए उनकी पत्नि उदयव कर रही हैं—
पुत्रपौत्रासजीने श्री श्रीरामचरितमानस में ऐसा ही लिखा है।
पूर्वक श्रीपौत्राजी का साथ विवाह हुआ। पुत्र-
वारिद सजाकर मिथिला पहुँचे। बड़ी धूम-धाम से विभि-
न्न कुलगुरु महर्षि ब्रिण्ण तथा भरत-शर्जुन के साथ बड़ी भारी
लिये अग्र्येया दत्त भेजा। समाचार पाकर महाराज दशरथ
आज्ञा से महाराज जनक ने महाराज दशरथ की बृत्तों के
परशुरामजी के चले जाने पर महर्षि विश्वामित्रजी की
पर चले गए।
आचार्य श्रीराम से क्षमा माँगकर तपस्या करने सहेंद्र पर्वत
तट पर पहुँचे अपना स्वरूप सभी भाँति देख लेता है। वे
सं परशुरामजी की अपनी भुँने वैसी ही दीखने लगती हैं जैसे
सूर्य पर विजय पाया जाता है। अतः श्रीराम के पूर्ण प्रकाश
हैं? जान द्वारा नष्ट हो जाता है, सहृणुण द्वारा
धुंधला है। क्या कहें प्रकाश के सामने अंधकार रह सकता
न सदापूर्वक ही देते हैं। सूर्य के सामने दीपक कीका और

“किम्बन्धे धनुष बोलो है ?” उनके हठ के मारे कोई कुछ नहीं बोल सका, वह सर्वगुणसम्पन्न श्रीरामने उन्हें पुनः सादृश प्रणाम करते हुए कहा—“सुनिश्चर ! धनुष तो आपकी एक सेवक के हाथ से टूट गया है । आपका क्या आदेश है ? मैं उसका पालन करने वाला आपका ही दास हूँ ।”

परशुरामजी कोष में बहुत बोलने जा रहे थे । कोष में केवल दण्डूण ही धरे रहते हैं । मनुष्य की इंसाने वस्त्र की चेहरे करने की बाहिए । सबसे पहले दण्डूण इंसाना यह है कि कोष में निवेक नष्ट हो जाता है । क्या करना बाहिए और क्या नहीं करना बाहिए, यह नहीं सुझता है । कोष में निरर्थक बातें बहुत बोलो हैं जिनसे जीवनी शक्ति नष्ट होती है । कोष करने वाले की लोक में अपकीर्ति होती है । एक वाक्य में यही कहा जा सकता है कि कोष से केवल इतिहास ही है और कोष करना छोड़ो का काम है । श्रीराम पूर्ण ब्रह्म परमराम हैं । उनमें कोई अवगुण नहीं है, केवल गुण ही गुण हैं । स्वामी रामावतुजावाय, रामानन्दवाय अहि वैष्णवा-वायों ने ठीक ही कहा है कि पूर्ण ब्रह्म परमरामा जब समुल्लासित होते हैं तो उनमें केवल गुण ही रहते हैं । और एक भी अवगुण नहीं रहता है । अब : श्रीरामकी कभी कोष नहीं आता है । वे सदा शांत हैं । उत्तर भी सदा

जानक से उदितकर पूछा—
परशुरामजीने धनुष के टुकड़ों की देखकर महाराज करने वाला राम जैसे सर्वगुण सम्पन्न बन जाता है । महोत्सव ही जाता है । दूसरे भद्रों में सादृश प्रणाम प्रणाम करना करना राम जैसे कोई भी महोत्सव, दीर्घ और दिवसों का भजन होता है, लेकिन इस प्रकार

श्रीशंकरजी के धनुष के डटने की बात सुनकर परम
 विजयवी परशुरामजी कोष में भारे जातकपूर आए। वे बड़े
 भारी परशुमारी और बहुत कोषी स्वभाव के थे। उन्होंने पूजा
 के क्षत्रियों की इककसवार दंड-दंडकूर मारी थी। उनको
 आते देखकर सभी राजा दर के भारे कांप गए। सबने उनको
 प्रणाम किया। श्रीरामने उन्हें सारंग प्रणाम किया।
 क्षत्रियोंने प्रणाम का महत्त्व अद्भुत बताया है। हर राजा
 में प्रणाम से जीव का संगल ही होता है। प्रणाम की क्रिया
 से ही माकण्डे अमर वन गए। जिससे दीर्घायु बनने की इच्छा
 हो, वह वासुधायी, भक्त, गुह्यजनों को प्रणाम करे। भगवान्
 को प्रणामकर उन्हें प्रसन्न किया जाता है तथा उनकी भक्ति
 प्राप्त की जाती है। गीता १३।४४ में भगवान् ने स्वयं ही कहा
 है-“मयाजी मां नमस्कर”। प्रणाम करने की कई प्रणालियाँ
 हैं, लेकिन सब प्रणालियाँ भगवत्कारी ही हैं। कुछ की वर्त
 करमा चाहते हैं “व्यापिक ऐसी दिव्य क्रिया से जीवम दिव्य
 बनता है और सुख-शांति की प्राप्ति की जाती है। इष्ट
 जाँकर जाने प्रणाम करते हैं, उसका अर्थ यह है कि
 आप जाने कहेंगे, यह करने अर्थात् आज्ञाकारी बनना है। फिर
 श्रुतिस्वरूप जो प्रणाम किया जाता है, उसका अर्थ यह है कि
 आपको वहि वही है और आप जाने आदेश देने, उसका पालन
 करने के लिए तैयार हैं। सारंग प्रणाम का महत्त्व पूर्ण
 समर्थ है। यह नम्रता की परीक्षा है। इससे समस्त



श्रीराम-विवाह

राम कहे, राम कहे, हराम कहे वावरे ।
अवसर न चूक, थोड़े, पायी थोड़ी दाँव रे ॥



सकता है । रामने सारा उपदेश तथा ज्ञान अपने आदर्श
जीवन तथा चरित्र द्वारा ही दिया है जिससे वह आज भी
बर्तमान है और भविष्य में भी वह सदा ही रहेगा । देखते
वाले उसे आज भी उसी रूप में दर्शन करते हैं । ऐसी अमूर्त
दृष्टि योगिराज अरविन्द ने हम लोगों को प्रदान की है ।
आगे श्रीराम विवाह में उनके दिव्य गुणों को देखा
जाए । उन्हें कभी कोय नहीं आता है तथा सर्व गुणों वने
रहने की लीला परचुराम संवाद में दिखलाते हैं । अतः आगे
का शीर्षक "श्रीराम-विवाह" खूब ह्यान पूर्वक पढ़ने योग्य
है । उनकी लीला द्वारा भी यह सिद्ध हो जाता है कि वे
पूर्णवश परमात्मा हैं । उनके समसामयिक महर्षि वार्षाभिकने
भी उन्हें अवतारी भगवान् ही स्वीकार किया है ।

भगवान् दाना दयालु है कि उसने ऐसा कोई कर्त्त
 नियम नहीं बनाया था ऐसी कोई पाबन्दी नहीं। उसकी
 जिससे किसी जीव को उसे पावे में कटिनाई हो। उसकी
 शक्ति के अनेक साधन हैं, अनेक मार्ग हैं, अनेक सिद्धान्त हैं
 और सब सही हैं, यही हमारा सनातन वैष्णव साहित्य कहता
 है। उसके अन्तर्गत नाम हैं, अन्तर्गत रूप हैं, लेकिन वह सबपुत्र
 में एक ही है। चाहे सगुण रूप में उपासना करे या निर्गुण
 रूप में उपासना करे, यह अपनी खि है। राम सगुण भी है,
 निर्गुण भी है और इन दोनों से परे भी है। जिस भाव में
 उसे स्वीकार करे, वही भाव सत्य है, गूढ़ है। उसे किसी भी
 नाम से, किसी भी रूप से स्वीकार करने में संदेह और
 अविश्वास नहीं करना चाहिए। उसकी शक्ति अद्भुत और
 विशाल के आधार पर होती है। वह राम गुण के रूप में,
 सत्त्व के रूप में, भक्त के रूप में या सर्व रूपों में अवश्य ही हो
 सकता है। उसका रूप देना ही अवतार है। जैसे-जैसे
 अवतार करण गूढ़ होता जाता है, उसकी बात भी स्पष्ट समझ
 में आने लगती है। गूढ़ गूढ़ हृदय में भी वह सदा निवास
 ही करता है। सारी शक्तियाँ और सारे सर्वगुणों का सञ्चय
 उसमें विद्यमान करता, उससे प्रेम करता है। हृदय की
 स्वरञ्जिता पर ध्यान देना अनिवार्य है। भगवान् की स्वीकार
 करने से ही अङ्कार, ममता, मोह आदि-दुर्गुण दूर होते हैं।
 ज्ञान का उपयोग चरित्र में तथा जीवन में होना चाहिए।
 चरित्र और जीवन के द्वारा ही सच्ची शिक्षा दी जा सकती
 है। जिसका चरित्र ही सुन्दर और पवित्र नहीं है, वह ज्ञान
 क्या दे सकता है? उसका ज्ञान देना ही गीमात्र कहें जा

हे:- "सर्व गुणैः शारदावतारः"

यह पूर्व ही बात चके है कि सभी अवतार पूर्ण ही होते हैं। ऐसा नहीं है कि कोई अवतार छोटा हो और कोई बड़ा हो अर्थात् कोई आधा भगवान् हो कोई संपूर्ण भगवान् हो। भगवान् के रूकने नहीं हुआ करते हैं। वेदव्यासजी कहते हैं।

“इति न स्यात्”

“इति अवतार इव जहि होई।

पुन्य गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा है :—

स्वभाव होने के कारण ही वह अवतार जन्म है। इतिहास उल्लेख सब काय पराये ही होता है। अकारण दयालुता का पूर्णकाम है, उसका अपना कोई स्वायं नहीं हो सकता है। किसी से राग-द्वेष नहीं है और जो अपने में ही पूर्ण एवं अगाध, असीम दया ही नहीं जा सकती है क्योंकि जिसका अनुसार अवतार का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कारण भगवान् की प्रेम के सागर में निमग्न होकर बहता है। ऐसी स्थिति के कारण जिस भक्त की स्थिति प्रतीत होता है वह श्रद्धा और अवतार से संबंधित अवतारी भगवान् ही जानते हैं किन्तु जो बाधना अनुचित है। अवतार का रहस्य तो ठीक-ठीक है। अवतार होने के अनन्त कारण होते हैं जिनमें सीमा में साकार होता है और अनन्त कल्याण का काय सत्पदन होता है उस प्रकार यह स्पष्ट किया गया कि निराकार ब्रह्म ही में ही संलग्न रहते हैं।

भक्त, ज्ञानी, मर्यादी, तपस्वी संतजन परम सत्य के प्रत्यक्ष अवतार होते हैं। परम सत्य का प्रत्यक्ष होता अवतार है। और वहीं की भूमि सर्वांगीर युद्ध होती है, वहीं भगवान् का निकलना कि हृदय पूर्ण युद्ध होने पर हृदय में अवतार होता है अवतार होता उनके नहीं कहा जाता है। निष्कर्ष यही

अवतार लेने के कारणों को कोई सीमा में नहीं बाँध सकता है। अवतार सार्वभौम प्रयोजन "यही है, इतना ही है" यह कहते अनाधिकार वेदा है। अवतार के कारण इतिहास नहीं कहे जा सकते हैं। अवतार भी एक ही ढंग से एक ही रूप से नहीं लेते हैं। वे अनेक रूप से अनेक ढंग से अवतार लेते हैं, इतिहास पुनर्निर्माण करते हैं :—

"नामो भक्ति राम अवतारः"

भक्ति की साधना द्वारा वह राम इन्द्र में निगुण रूप से अभ्यस्य किया जाता है और इन्द्र के वाहर संगुण रूप में देखा जाता है। इन्द्र में अगुण से देखा जाता है और न वाहर नेत्रों से संगुण रूप में देखा जाता है। जो इन्द्र में राम देखा जाता है, वही इन्द्र के वाहर सर्वत्र देखा जाता है। राम एक ही है सर्वत्र है और सर्वत्र है। भिन्न योग से, साधना योग से वह इन्द्र में तथा वाहर भी प्रकट होता है। उसका प्रकट रूप ही "अवतार" कहा जाता है। उसका विवर्तनकर, मननकर कोई भी उसे प्रकट कर सकता है।

अनन्य में अवतार के प्रसंग में यही कहा जा सकता है कि अवतार भगवान् की प्रकटय लीला है। यह एक मुनिप्रेषित लीला है। कल्याणप्रवण, प्रकटप्रवण है कर भगवान् प्रकट होते हैं और मानवता का आध्यात्मिक कल्याण करने हैं। उनके अवतार के पहले ही धरती से आकाश तक भूतों की श्रद्धा होती जाती है। जो स्थान सर्वपरि श्रद्धा रहता है, वही भगवान् प्रकट होते हैं। आध्यात्मिक सर्वपरि श्रद्धा भूमि है, अतः वही भगवान् का अवतार होता है। दशरथ और कौशल्या का अनन्यकरण अत्यन्त श्रद्धा होने पर ही राम का

गुलामीदासजी का अवतारवाद समन्वयवाद की ही एक छटा है। उन्होंने अपने उपरम्य श्रीराम से अवतार ग्रहण करते वैसे विष्णु, क्षीरशापी विष्णु, ब्रह्म और नारद पुराण के विषय-रूप का समाहित हो गए हैं या उन्हें से अथवा भगवान् राम से ही समाहित हो गए हैं। विष्णु के अवतारी रूप से श्रीराम का उतना ही सम्बन्ध विविव होता है जहाँ वे वैदिक कर्णों के लिए आविर्भूत होते हैं। वैदिक कर्णों का मतलब यहाँ श्री-भार हरण लड़का से रावण तक देवधर्य अर्जुन का सहोदर-वेद, ब्राह्मण और गी-रक्षा से है।

गुलामीदासजी ने क्षीरसमुद्रापी विष्णु की श्रीरामावतार से ही समाहित किया है, क्योंकि नारद के शापवश वतार से ही समाहित किया है, वतार होता है तथा नाना चरित्र के क्षीरशापी विष्णु का अवतार होता है। देखिए:—

पुत्र ब्रह्मण्ड जान कहे, कोई।
कोउ कहे पयनिविषय पय सोई ॥”

पौराणिक भगवान् के अतिरिक्त गुलामीदासजी ने श्रीअष्टशंकराचार्य द्वारा उपनिषदों में प्रतिपादित निर्गुण ब्रह्म का अवतार होना भी स्वीकार किया है। देखिए:—

“उपाक अकल अनीदे अब निर्गुन नाम न रूप।
भगत हैतु नामा विवि करत चरित अर्पण ॥”

विस भकार नर अनेक भकार का रूप धारण कर अभिमान्य करता है और जी-जी भाव प्रदर्शित करता है, उनमें वह आशक्त नहीं होता, उसी प्रकार राम चरित जीना में आशक्त नहीं होते हैं। भले ही उनका चरित्र प्रकट नर की भाँति प्रतीत होता है, लेकिन वह गुणातीत होता है।

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

[illegible]

—: १३५ २।६ ३॥७ ४॥८ ५॥९

“अध्यात्म रामायण” में भू-भार-हरेण के साथ ही देवभक्त का नाश प्रबल करण बताया जाता है। शक्तिवश-रामजीने राम के अवतारवाद में अवतार के साथी करणों का

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

[illegible]

一：知

किया है ।
जहाँ राम कैवल अवतार है, वहाँ पारमार्थिक से लेकर
मध्यकालीन तक कविर्गो तक उनके अवतार का मुख्य हेतु
भू-भार हटाना बताया जाता है । श्रीगुरुसिदासजीने कहा

रामावतार के अवतार हो सिद्ध किया है ।
रामावतार के सत्त्व-धर्म यही जानना चाहिए कि राम
आदि से अन्त तक मर्यादापालक है । धर्म के लीलापुरुषोत्तम
कल्याण की तरह इनके अवतार में लीला नहीं हुई है । कहे
बार यह कहें चुके हैं कि हर अवतार के उद्देश्य और कार्य
पूर्व से ही नियत रहते हैं । कल्याण की लीला प्रधान है, लेकिन
राम का धर्म प्रधान है । धर्म की प्रधानता के कारण ही
विष्णुदास रामायण को "रामधर्म" के नाम से अभिहित

अथर्व उपाय रूप में वे अवतारी अथर्व पूर्णब्रह्म परमेश्वर हैं। गोस्वामी तुलसीदासजीने एक ओर तो राम के अवतार-चरित्र का प्रतिपादन किया है और दूसरी ओर उनके पूर्ण-ब्रह्मत्व को स्थापित किया है। उन्होंने सारे देवों को

यह शीर्षक राम का अवतार है, अतः अवतार सार्वभौम
वर्षा हो उपर्युक्त है। अवतार के रूप में राम विष्णु के अवतार

जायगी।

असमान है। रामनाम की वर्षा आगे विस्तारपूर्वक की
का कोई नाम छोट, बड़ा नहीं है। छोट-बड़ा समझना
सकजान अधिक रस की प्राप्ति के लिए हो करवे है। भगवान्
है और इसके विशेष गुणों का भी उल्लेख किया जाता है, यह
कहते-कहते रामनाम की भगवान् राम से बढ़कर बताया जाता
अज्ञानियों की भ्रम-भ्रम अज्ञानता के कारण प्रतीत होते हैं।
रामनाम और भगवान् राम दोनों एक ही हैं। केवल
और वर्तन है। रामनाम सर्वोत्तमक है और सर्वोत्तम है।
रामनाम क अवतार ही भगवान् श्रीराम के सारे गुण

“अति पावन गुण अति सरा ॥”

“एहि महुँ खलि नाम उदाता।

रामचरितमानस की बताया है :—

कर लिया। इसी उद्देश्य से श्रीविलंबीसजीने श्रीरामनाममय
का रत्न पालिया उसने सपूर्ण रामकथा का सार ही ग्रहण
विषय रामनाम में प्रमाणित करना है। जिसने रामनाम
होता है। कुछ सन्तों का कहना है कि रामकथा का प्रतिपादन
रामकथा सुधासागर से ही रामनाम अमोल रत्न प्राप्त

बोला की है जिसकी वर्षा आगे देवे।

दासजी ने रामकथा द्वारा राममूर्ति-सुधा पिबने की अत्युत्तम
श्रीराम का चरित्र सर्वदा सर्वाधिक प्रशस्त है। श्रीविलंबी-
अवश्य अतुलनीय है। सप्त पूर्णिमा की मातृव जीवन के लिए
आदेश तो पालनीय है ही और साथ ही उत्तम चरित्र भी

हैं, मित्र-मित्र अवतारों की मित्र-मित्र विशेषताएँ अवश्य होती हैं। अधिकांश अवतारों का केवल आदेश पालनीय और माननीय होता है जैसे भगवान् कृष्ण का उपदेश ही पालनीय और माननीय है, लेकिन रामावतार का बड़ाई नहीं होती।

गर्व का गति भ्रम कर जाता है, लेकिन अग्नि की छटाई, कभी फूस के छप्पर में भी धधकी है और कभी-कभी तो नहीं है। अग्नि एक छोट से गायट में भी जाती है, कभी-कभी लघुवा और विधातवा दीख पड़ती है, वह वास्तविक नहीं होती। सभी अवतारों का मान बराबर है। अवतारों पर भ्रमर ही सदा आते हैं, भ्रमर अवतारों की छटाई, बड़ाई है और इसी प्रकार अन्य अवतारों के रूप में भी वही एक यहाँ भगवान् औराम के अवतार की चर्चा की जा रही है। भगवान् के रूप में आता है।

उसी प्रकार सकल ब्रह्माण्डमयक परमेश्वर स्वर्गजगत्त्रयक इस रक्षाएँ होता है तो वह जल का स्वाधी पूर्ण स्वतन्त्र रहता है, अधीन रहता है और जेवर जेन में रहने वाले अपराधियों के अपराधी जो जेन में सजा पाकर आता है तो वह जेवर के रोगी, कोई विद्वान्, कोई मूर्ख होता है। जिस प्रकार होते। कोई शरीर से सुन्दर, कोई कुलप, कोई स्वयं, कोई के कारण ही सभी लोगों के शरीर, गुण आदि समान नहीं आतेर आते विस्तर से बताया जाएगा। मित्र-मित्र कर्म के लिए नहीं होता है। अवतार और सामान्य जीव का भगवान् का अवतार किसी प्रकार कर्म का योग योग्य को सहज ही पार कर जाते हैं।

विस्तर करते हैं। वही यश गा-गाकर भक्तजन संसार संसार

रामावतार के विविध प्रयोजनों में एक प्रमुख प्रयोजन यह भी है कि करुणा-सिन्धु भगवान् अपने भक्तों का परम करुणा करने के लिए अपने प्रवल और विमल यश का स्वयं अवतार लेने के लिए विवश कर देती है।

पुनः वन जाऊंगा। यह है भगवान् की भक्तवत्सला जो उन्हें कहीं खोजने जाऊंगा। स्वयं ही अवतार धारणकर पुनः ही की रक्षित रखनेवाले भगवान् कहते हैं कि मैं अपने समान पुनः मांगते। भगवान् के समान पुनः मांगते हैं। लेकिन भक्तों मनुष्यी भगवान् से स्वयं भगवान् की पुनः स्वयं से नहीं

उप नव नवप होउ मैं आई ॥”

“आप सवि खोवउ कहूँ जाई।

भक्तवत्सल भगवान् कहते हैं :—

“दाती सिरोमणि कृपाविधि नय कहूँ सवि याव।
बाहुँ पुनः ही समान पुनः प्रमुख करन दूराव ॥”

नव मनुष्यी कहते :—

“बोले कृपाविधाय पुनि, अवि प्रसन्न मोहि जानि।
माँपहुँ वर जोइ याव मन, महदाति अनुयाति ॥”

भगवान् ने वर मांगने के लिए कहा—

“प्रसन्न प्रपट भगवान् ॥”

“भगवत्प्रसन्न प्रपट कृपाविधाय।

कहते की अलग से कैसे देखता रह सकता है ? मनु और भक्तवत्सल की धीरे धीरे कर भगवान् प्रकट हो गए।

है।
 महर्षि वारमर्षि ने रामावतार की कथा को लोक मंगल
 के लिए अपने काल्य में वरदा किया। भगवान् राम का
 चरित्र दलना अधिक लोकमंगलकारी तथा शिक्षाप्रद है कि
 महर्षि वेदव्यास प्रत्येक पुराण में उनका मंगलमय चरित्र
 अवश्य ही गाते हैं जिसकी वज्रां अभी उनके चरित्र के शीर्षकों
 में करते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी उन्हें अपना दण्ड
 ही बनाया और उनकी भक्ति की वज्रां अनेक ढंग से की है
 जिसे अभी देखने की कथा की जा सकती है।
 भक्त भगवान् का दलना चारा होता है कि भगवान्
 भक्त की सुखी और प्रसन्न करने के लिए, स्वयं ही आ जाते
 हैं। यदि किसी महारानी का चारा शिक्षा प्रलय से जुड़कर
 पुत्री पर गिरने लगे या फिर पड़े तो उस आँखों के चारे शिशु
 की उठाने के लिए वह अपने मौकरी और दासियों की आदेश
 नहीं देती है। वह प्रेमप्रवण स्वयं ही दौड़कर उठा लेती
 है। माँ-बाप का हृदय दलना कोमल और प्रेमपूर्ण होता है
 कि वे बच्चे के कण्ठ की दूर करने के लिए, स्वयं ही दौड़ पड़ते
 हैं और उचित उपचार में लग जाते हैं। फिर वह प्रेमपिता
 परमेश्वर जो प्रेम का लहराता हुआ सागर है, अपने भक्तों के

समुल्लापन के साहित्य में यही दर्शाया जाता है कि समाज में समानता के साथ कीड़ा करने के लिए हमारे जैसे बनेर इस भूमण्डल पर उतर आते हैं। वे ऊँचाई के आकार हैं। ऊँचाई करती उनका सहेल स्वभाव ही है। ऊँचाई किए बिना उनसे रहीं नहीं जाता है। इसलिए जब-जब यहाँ पर विपत्ति आती है पूरवी पहाड़ों के पार से दब जाती है, साँझ पुरुष वृत्ति बरहें सताये जाते हैं और अस्मितापरियों के अस्मिता-पार अस्मिता ही जाते हैं, जब-जब पूरबी का पार हरेण करत

“सुनिश्चित रूप से ज्ञात, निश्चय ही”

जाता है। जिस प्रकार निराकार जीव का जन्म सिद्ध होता है, उसी प्रकार निराकार परमात्मा का जन्म भी सिद्ध होता है। लेकिन यह अवश्य स्मरण रखने योग्य है कि भगवान् किसी के गर्भ से जन्म नहीं लेते। जन्म लेने की वे लीला करते हैं। सामान्य मनुष्य उनकी लीला के रङ्गमंच की कुछ भी नहीं समझ पाते हैं और उन्हें भी एक मनुष्य की तरह समझ लेते हैं। भगवान् की मनुष्य कहना महोपाहृति है और इससे मनुष्य का कल्याण किसी भी योगि से संभव नहीं है। भगवान् रामका अवतार दिव्य रूप में हुआ। माता कीर्तिदाया के सामने शेष, बक, गदा, पद्म लिए चतुर्भुज रूप में भगवान् प्रकट हुए। उनके दिव्य प्रकाश से पूरा महल जगमगा रहा था। माता कीर्तिदाया की प्राणना करने पर वे शिशु बनकर बच्चे की तरह रोने लगे। तुलसीदास जीने लिखा है:—

अवतारवाद का मधुमय विवेचन संपूर्ण धर्मशास्त्र तथा
 शक्तिशास्त्र में है अर्थात् श्रीरामचरितमानस, श्रीमद्भगवद्-
 गीता, श्रीमद्भगवद्गीता तथा समग्र वैष्णव साहित्य में देखा

“यह चरित्र है
 पावर्ति, ते न परहिं भवकर्म॥”

कहा है :—

इसरी को सुनाता श्री पावर्ति । तुलसीदासजी ने सत्य ही
 उक्तका चरित्र अवश्य गाता पावर्ति, सुनता पावर्ति और
 पावर्ति कि भगवान् को करुणा एवं मुक्त के सागर है, अतः
 यथाचित्तान् मान पावर्ति हो जाता है । यह सदा स्मरण रखना
 कभी भवकर्म में नहीं पड़ते हैं अर्थात् कर्मबंधन रूप संसार का
 में प्राप्त होती है । भगवान् का अवतार चरित्र मानवज
 नवीन चेतना जागती है और अनेक भगवद्भक्तियां जीवन
 अवतार चरित्र के गुणगान से जीवन में स्थापित होती है,
 सर्ववर्तियों तथा जीवन पर स्थायी प्रभाव देता जाता है ।
 युग-युग तक रहता है और सदा ही मानवीय कर्मा, विचारों,
 भगवान् के विषय अवतार का प्रभाव-मानव जाति पर

रहते कृतान्वित भवजन्मी॥”

तब तब प्रभु धरि विविध सरीरा ।

सीदहि विष धेनु धरु धरती ॥

करहि अनीलि जाइ गहि धरती ।

पारहि अष्ट अक्षय अस्मिता ॥

“तब तब होइ धरम के दानी ।

—: है

“एक अतीव अल्प अनाम । अत्र सन्निवृत्तं प्रथम ॥
 व्यापक विस्तृत प्रमाण । त्वि यदि दृष्टवति क्व नमः ॥
 श्रीमद्विस्तृतमनास सं अवतर का प्रथम सप्त कान्ति
 सं देखा जात है जोसे बालकान्ति सं बालकान्ति पार्वतीजी से करते

वृत्तसिद्धिनाम के अन्त ही देवे जा सकते हैं :—

मनुष्य—देव धारण करके माना प्रकार की लीला की है ।
 उन्नीषण परमाणु ने दशरथनाम श्रीराम के रूप में
 धामक है, जिसका कोई नाम-रूप नहीं है, जो इच्छारहित है,
 बलान है कि जो परमेश्वर एक है, सच्चिदानन्द और परम
 “श्रीमद्विस्तृतमनास” में गोस्वामी वृत्तसिद्धिनाम ने
 अवर्णित है (वारम्भिक रामायण २।१।७)

करने की योजना से देवताओं की प्राप्ति पर मनुष्यलोक में
 साक्षात् सनातन विष्णु है और परम प्रबुद्ध राजा के वध
 महेष् वारम्भिक के कथनानुसार अनाम श्रीराम
 से रहित सनातन परम ब्रह्म है, वे ही श्रीराम हैं ।

अर्थात् जो सच्चिदानन्द, अद्वीय, समस्त उपनिषद्

“वर्णितानि सव्यवृत्ति पदं वेद स वेदविदः ॥”

“रामं विद्वि पदं ब्रह्म सच्चिदानन्दमव्ययम् ।

जी से बनाया है—

सुन्दर देव्य बालकान्ति श्रीगणेशजीने भक्तप्रवर हनुमान
 “अष्टादशरामायण” में अनाम श्रीराम के अवतार का

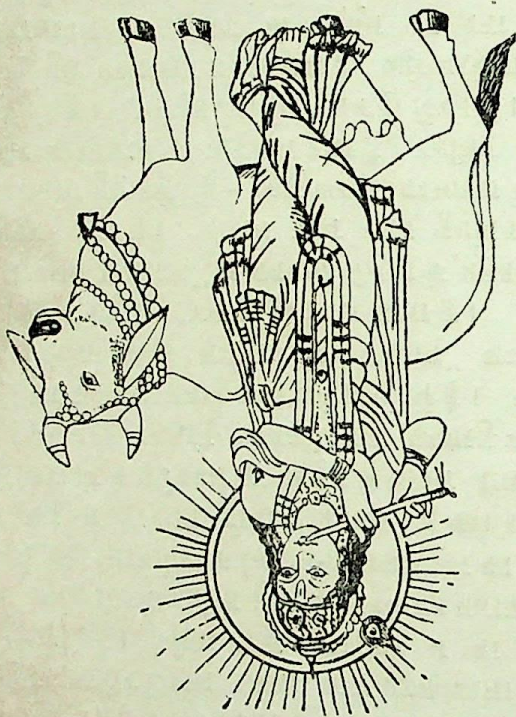
महात्मि सव्यवृत्ति पदं वेद स वेदविदः ॥”

“मया तस्मिन् विषयं जगत्प्रत्यक्षम् ।

समझता हूँ । देखिए :—
अद्वैतवादाभाषण का श्लोक भी उद्धृत कर देता अवश्य
प्रकार जो मुझ परमात्मा को जानता है, वही वेदवेदांग है ।”
जानते हैं ही हैं । सर्वभूत प्राणी मुझमें ही स्थित हैं । इस
रूप और आत्मस्वरूप का प्रादुर्भाव हुआ है, इसीलिये सत्पुरुष
रक्षक बलवान् हैं—“मुझ अत्यन्त परमात्मा से काल
बड़ा सुन्दर प्रसंग है । औरिमा स्वयं अपने पूर्णविवार का
“अद्वैतवादाभाषण” में आगवान् औरिमा के अवतार का
प्रयोग ब्रह्म के सगुण-साकार में ही किया जाता है ।
प्राणिजक तथा अतिक्रम साहित्य में “आगवान्” शब्द का
स्वयम्” का उल्लेख हमारे सभी धर्मशास्त्रों में है । वैदिक,
इसीलिये “रामस्वयं आगवान् स्वयम्” तथा ऊष्णस्वयं आगवान्
सगुण साकार में वे बड़ेस्वयं या बड़ेगुण से सत्पन्न देखते हैं ।
साकार रूप में परिवर्तन होता “अवतार” है क्योंकि इष्ट
है कि पूर्ण ब्रह्म तारागुण के निर्गुण-विराकार रूप का सगुण-
संस्कृति” विशेषक प्रकाशित हुआ है, उसमें यह बताया गया
होता, आदि है । गीता प्रस, गोरखपुर से जो “हिन्दू
प्रवर्तित अर्थ शरीर धारण करती, जन्म मरण करती, प्रकट
का अर्थ निम्न-निम्न दंग से किया है । “अवतार” शब्द का
निम्न-निम्न महत्त्वपूर्ण तथा महत्त्वपूर्ण से “अवतार” शब्द
भारतीय साहित्य में अवतारवाद का विशिष्ट स्थान है ।



अज्ञान का अवतार



पुष्पवत्सल भगवान् राम वन में भक्ति गुरु की उपास में
 पड़ें, नव उरों ने उससे वृष्णि की वृत्ति की वृत्ति वृत्ति
 और अक्षयवत् वृत्ति वृत्ति वृत्ति वृत्ति वृत्ति वृत्ति वृत्ति
 भगवान् ने उसकी भक्ति की वृत्ति वृत्ति वृत्ति वृत्ति वृत्ति
 वृत्ति वृत्ति वृत्ति वृत्ति वृत्ति वृत्ति वृत्ति वृत्ति वृत्ति

भगवान् राम की अग्रिम उदारता का वर्णन करते हुए
महर्षि श्रीमदनमोहन मालवीय जी ने लिखा है कि मयादा
प्रदर्शित किया है ।

अग्रिम का प्रत्येक कार्य केवल इच्छा मात्र से होना
है । उन्हें किसी कार्य के संपादन के लिए परिश्रम या प्रयत्न
की आवश्यकता नहीं पड़ती है । अग्रिम में वे धर्म की
अनायास ही उठा लेते हैं और धर्म स्वयं ही उठ जाता है ।
विराध, कवध, बाली आदि का वध केवल एक बाण से ही कर
देते हैं । राम का युद्ध नहीं करते, बल्कि उसे खेल
खिलाते हैं । उसी इच्छा से ही ब्रह्मांड संचालित है । सर्व
अग्रिम का प्रकाश तुलसीदासजी ने बड़ी एवं सारकता से

भगवान् ही कर सकते हैं ।
मया और नीति का उल्लंघन नहीं कर सकते । यह कार्य
नहीं हो सकता और आदर्श मानव नीतिकता के विचार से
मयाधर्म मनुष्य के संकीर्ण हृदय में यहाँ के प्रति इतनी उदारता
मयाधर्म मनुष्य में देखी जाती है और न आदर्श मानव में ।
यहाँ के प्रति इतनी उदारता और इतनी क्षमता न हो
(रामचरितमानस अ० २६)

“रहित न मयु निव चक्रे किर की ।
काम धृति मय वा हि क की ॥
वेहि मय धृति मय निव वा ॥
किरि मुकठ मय कीरि कुवाली ॥
मय करुनि विधीय कयी ।
मयदेहि मी न राम हि य देही ॥”

देखिए: —

पक्षपात पर कटाक्ष करते से राज नहीं आते । पर उनका ध्यान नहीं जाता है । स्वयं बुजबुझास भी इस के अपराध पर दण्ड देते हैं, पर भक्त विभीषण की इस कुबाल उनकी भक्तवत्सलता प्रसिद्ध है । बाली को वे परनाशिरमण भक्तों के प्रेम में नीति-अनीति सब कुछ भूल जाते हैं । का आलाचन वनकर उनमें ईश्वरदत्त का आभास करता है । उनके महेमातावर का अधिक विद्वान है जो मानवीय श्रेष्ठ परब्रह्मण्य की पदवर्माते हैं । भक्तिन वास्तविक रामायण में इस प्रकार समस्त प्राणी लौकिक मातों के बीच भी उनके

पक्षपात से अवगत हैं ।

महो, बलिक माया-गुणजगतीति है । दशरथ भी उनके जन्म के समय ही सचेत कर देते हैं कि वे उसके सामान्य पुत्र स्वयं रावण का भी उद्धार करते हैं । माता कीश्वर्या को वे बलिक लोकोद्धार के लिए करते हैं और लोक के साध-साधन किशो से मित्रता । रावण का वध वे शत्रुवधवा नहीं करते, और विरट अभय है । उन्हें न किशो से शत्रुता है और मातावत् श्रीराम का समस्त जीवन एक विद्याल कीर्ति

“मातावत् राम” कहते हैं ।

में जो “परम पिता” है, उसी परमाश्रित्य की बुजबुझास भी कहा है, शत्रुते विसे “परमपिता” माता है, वैष्णवों की दृष्टि स्वरूप है । उपनिषद्कारों और वेदविद्वानों विसे “ब्रह्म” बुजबुझास के राम परम वर है । वे सच्चिदानन्दवन

ही करते हैं, अतः उनका मातृमय मध्य परिव आगे देखें ।

निरकार रूप परमार्थ से अधिक लाभ नहीं हो पाता।
 प्रकट अग्नि से ही अथकट अग्नि का ज्ञान भी होता है, उसी
 प्रकार साकार परमार्थ (अवतार) से ही निरकार परमार्थ
 का ज्ञान होता है। निरकार का अर्थ भी जीव निम्न-निम्न
 करने है। निरकार का सामान्य अर्थ यही है कि एकही
 आकार जिसका नहीं है, जिसका अन्त आकार है, अतः
 उस निरकार का वर्णन करना संभव नहीं है, इसीलिए उसे
 "निर-वर्ण" भी कहते हैं। वर्णन तो साकार का ही होता है।
 इस प्रकार निरकार अत्यन्त सूक्ष्म है देखा, मना नहीं जा
 सकता है। लेकिन हमारे ऋषियों ने तथा यत्नों ने परमार्थ
 को निम्न-निम्न रूपों में देखा है और इसीलिए निम्न-निम्न प्रकार
 से परमार्थ का वर्णन किया जाता है। समुद्ररूप अवतार
 द्वारा भगवान् अन्तर्गत भाँति से यत्नों का तथा सारे जीवमात्र
 का कल्याण करते हैं और अर्थ का भी निरकार करते हैं।
 अर्थ के निरकार में नाम, रूप, लीला, धाम का निरकार
 करते हैं जो अर्थ करते हैं अत्यन्त सरल अर्थ है। "अवतार
 द्वारा अर्थ का निरकार" अर्थक ही अलग लिखना चाहता
 है, अतः अभी उसी अर्थक में देखें।
 वास्तविक रूपमात्र ६१४७५११ में भगवान् राम स्वयं
 अपने को एक सर्वत्र रूप में स्वीकार करते हैं—"अन्तर्गत
 सर्वत्र रूपमात्र ६१४७५११ में भगवान् राम स्वयं
 अपने को एक सर्वत्र रूप में स्वीकार करते हैं—"अन्तर्गत
 विषय तथा अनेकान्य वस्तुओं की विधा देता है।
 श्रीरामरूप में भगवान् की आत्मा सब प्रकार की
 मानवीय विधा देता है। उनका चरित्र ही विधाप्रद
 है। सब ही वे उपदेश भी करते हैं, लेकिन उन उपदेशों की

अथकट अग्नि और प्रकट अग्नि की भाँति ही निरालाकार
परमाणु और साकार परमाणु (अवतार) की समझना
चाहिए। अथकट अग्नि सर्वत्र है, किन्तु उसका प्रकट रूप
विद्यमान सर्वसाधारण के उपयोग में नहीं आ पाती, वैसे ही
निरालाकार परमाणु सर्वत्र सर्वत्र है, किन्तु जीवमात्र की उस

जाती है।

सकता है, यही ही उनके अवतार के अन्तर्गत कारण बनाने
मुख्य प्रयोजन मानवमात्र की आदर्श शिक्षा देने की कड़ी आ
आदर्श शिक्षा देने के लिए भी होती है। रामक अवतार की
राक्षसों की मारने के लिए ही नहीं होती, किन्तु मनुष्यों की
२१०१५ के अनुसार परमाणु का मनुष्यवतार केवल
औसतमानवत ५१२१५ तथा औसतदेवीमात्रवत

गई है।

है। अवतार शिक्षा के प्रतिपादन में ही यह बात कही
अर्थात् पूर्ण से पूर्ण निकलने पर भी वह पूर्ण ही रहता
“पूर्णतम पूर्णमात्रा पूर्णसर्ववर्णमयते”।

है :—

इसी बात की वृद्धिरूपक ५११११ में भी स्पष्ट ही कहा गया
रूप निरालाकार, सर्वव्यापक रूप में सदा उद्योत रहता है।
वह एक रूप, अनेक रूप धारण करने पर भी अपने वास्तविक
परमाणु सर्वसम्य है। वह सब कुछ कर सकता है।

राम ऊँचा विष्णु सप्तैतु जीव न लह विष्णु ॥”
“विष्णु विस्वात्म भगति नहि, तेहि विष्णु बरहि न राम ।

कहे हैं :—

परम विष्णुम नहीं भगव करवा है, अतः पूज्य ब्रह्मविदासजी
भक्ति रूप उपासी ऊँचा की अनुभूति भी नहीं होती और जीव

हुए, उनसे प्रेम करना अनिवार्य है। इसीलिए तुलसीदासजी द्वारा रचित “श्रीरामचरितमानस” में राम की भक्ति प्रधान है और वाल्मीकि रामायण में चरित्र का स्थान सर्वोपरि है। चरित्र और भक्ति में भक्ति का ऊँचा स्थान है। भक्त निश्चय ही चरित्रवान् होता है, लेकिन चरित्रवान् भक्त नहीं भी हो सकता है। जीव का कल्याण भक्ति से ही संभव है। केवल शील और चरित्र से जीव का कल्याण होना असंभव है।

इस प्रकार वाल्मीकि तथा तुलसीदासजी के दृष्टिकोण में अन्तर अवश्य है, लेकिन परिणाम में मुझे अन्तर नहीं दीखता। दैवी सम्पत्ति में “देव” शब्द परमात्मा का वाचक है और भगवदीय गुण ही दैवी सम्पत्ति है—“देवस्येयं दैवी” परमात्मा का ही अंश होने से जीव में दैवी सम्पत्ति स्वतः स्वाभाविक है। जब जीव अपने अंशी परमात्मा से विमुख होकर शरीर आदि पदार्थों का संग कर लेता है अर्थात् शरीर, परिवार, धन और सांसारिक चिन्तन करने लगता है तब जीव में आसुरी सम्पत्ति आ जाती है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, दम्भ, द्वेष आदि आसुरी सम्पत्ति ही हैं। शील, दया आदि दैवी सम्पत्ति है अर्थात् भवदीय गुण हैं, अतः शील, पवित्र चरित्र का विकास निश्चय ही भगवान् की ओर बढ़ाता है। जिस मनुष्य में चरित्र के गुण का विकास होता है, उसे भगवद्भक्त ही वास्तव में मानना चाहिए। चरित्र की साधना कर कोई निश्चय ही भगवान् को प्राप्त कर सकता है, अतः श्रीराम के शील तथा आदर्श चरित्र को अपनाना राम की ही भक्ति है। भगवान् का गुणगान करने से भी शील और आदर्श चरित्र का निर्माण स्वतः हो जाता है। इस प्रकार वाल्मीकि और तुलसीदास के दृष्टिकोण में देखने में अन्तर मालम होता

है लेवि न अन्ततः अन्तर नहीं है ।

भक्ति पथ का अनुसरण करने वाले या परमार्थ पथ के पिकों में शील, सदाचार और पवित्र चरित्र के सारे गुण कैसे आ जाते हैं, इसका दिग्दर्शन स्वामी रामसुखदासजी ने अपनी पुस्तक “गीता की सम्पत्ति” में भली भाँति कराया है । उनका कहना है कि भक्तिमार्गवाला सर्वत्र अपने भगवान् को देखता है, इसलिए साधना पथ पर चलने वाला साधक में शील सदाचार आदि दैवी सम्पत्ति के गुण अवश्य आ जाते हैं । साधक अपने मन में दूसरों का दुःख दूर करने की भावना रखता है और उसके अनुसार उनका दुःख दूर करने की चेष्टा भी करता है । दूसरों को दुःखी देखकर उसका हृदय द्रवित हो जाता है, क्योंकि वह अपनी ही तरह दूसरों के दुःख को भी समझता है । इसलिए उसका यह भाव रहता है कि सब सुखी कैसे हों ? सबका कल्याण कैसे हो ? सबका हित कैसे हो ? इस प्रकार उसमें दैवी सम्पत्ति के गुण आ जाते हैं । सबों के कल्याण का काम करने में उसके मन में अभिमान नहीं आ पाता क्योंकि उसका स्वभाव ही ऐसा बन जाता है ।

जो प्राणी भगवान् की ओर नहीं चलते, दुर्गुण-दुराचारों में रत रहते हैं, दूसरों का अपराध करते हैं और अपना पतन करते हैं—ऐसे प्राणियों पर सच्चे साधक या भक्त को क्रोध न आ कर दया आती है । सच्चा साधक या भक्त ऐसी चेष्टा करता है कि ये लोग दुर्गुण-दुराचारों से मुक्त कैसे हो सकते हैं ? कभी-कभी वह उनके दोषों को दूर करने में अपने को निर्वल मानकर भगवान् से प्रार्थना करता है कि “हे नाथ ! ये लोग इन दोषों से छूट जायँ और आपके भक्त बन जायँ ।”

हाँ, भगवान् के शील तथा पवित्र चरित्र के प्रभाव से

प्रभावित होकर साधारण पुरुष भी दुर्गुण-दुराचरों को त्यागकर सद्गुण-सदाचारों को अपना लेते हैं, यह भगवत् चरित्र का विशेष प्रभाव होता है। भगवत् चरित्र सुनने से मनुष्य का अन्तःकरण पवित्र होता है और उसका उद्देश्य भगवत् प्राप्ति बनता है, अतः सद्भाव तथा दैवी सम्पत्ति के गुण स्वतः ही उसमें आते हैं। श्रीमद्भागवत में यह स्पष्ट कहा गया है कि जो भगवान् की ओर अभिमुख होते हैं, उनमें शील, सदाचार और मानवता के सारे सद्गुण निश्चय ही आते हैं। नाम “संकीर्तन मीमांसा और वर्णाश्रम-मर्यादा” पुस्तक में स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज और “भारतीय संस्कृति और साधना” में स्वनामधन्य महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथजी कविराजने भी स्पष्ट ही कहा है कि भगवद्भक्ति के बिना मनुष्य में शील तथा शुभाचरण का आना कठिन है।

सचमुच में “शील” शब्द मनन करने योग्य और विचार करने योग्य है। इसका सम्बन्ध आचार और चरित्र से है। सारे ऋषियों तथा दार्शनिकोंने शील तथा आचार पर अवश्य ही विचार किया है। कृष्णद्वैपायन महर्षि वेदव्यासने अपने ब्रह्मसूत्र के ‘पुरुषार्थाधिकरण’ में कर्मकाण्ड के प्रकाण्ड पण्डित एवं समर्थक महर्षि जैमिनि के मतका उपन्यास करते हुए शील, आचार की महिमा का प्रख्यापन किया है—“आचार-स्तद्दर्शनात्” (ब्रह्मसूत्र ३।४।३)

इस ब्रह्मसूत्र के भाष्य में अद्वैत मत के प्रधानाचार्य आद्यशंकराचार्यने बृहदारण्यक उपनिषद् के “जनकोह वैदेहो बहुदक्षिणेन यज्ञेनेजे” (३।१।१) विदेह के शासक महाराज जनकने ऐसा यज्ञ किया जिसमें बहुत-सी दक्षिणा दी गयी थी। इस वाक्य को उद्धृत किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि

(६८)

जनकजी जो उच्च कोटि के ब्रह्मवेत्ता थे, यज्ञ भी किया करते थे। सारांश यह कि जब जनक के समान परमादरणीय जानी व्यक्ति भी यज्ञ किया करते थे, तब हमलोगों को अपने आध्यात्मिक विकास के लिए उनके इस शील-सदाचार से अवश्य शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

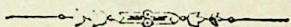
महर्षि जैमिनिजी के मत में जीवन के लिए कर्म ही प्रधान है और ब्रह्मविद्या गौण है अर्थात् ब्रह्मज्ञान से शील-आचार का ज्यादा महत्त्वपूर्ण स्थान है। शील-आचार से बढ़कर कोई दूसरा यज्ञ नहीं है, यही ब्रह्मसूत्र में भी सिद्ध किया गया है। भगवान् श्रीराम का शील-आचार ब्रह्मसूत्र की स्पष्ट व्याख्या करता है।

इस प्रकार हर मनुष्य को अपने जीवन के विकास के लिए शील, सदाचार और सुन्दर चरित्र पर ध्यान देना अत्यावश्यक है, यही निष्कर्ष निकला। वेदान्तचिन्तन से ज्यादा आवश्यक शील आचार का चिन्तन है। शील आचार द्वारा ही सच्ची शिक्षा दी जाती है और समाज में, जगत् में इसीका अधिक प्रभाव पड़ता है। शील आचार द्वारा ही धर्मात्मा और महात्मा की पहिचान होती है। जो शील, आचार पर ध्यान नहीं देता, वह मनुष्य कहलाने का अधिकारी नहीं है, यही हमारे ऋषियों की ध्वनि है। सभी वेदों में शील, सदाचार की शिक्षा सर्वत्र गूँजती है। भगवद्भक्ति का एक प्रधान अंग चरित्र का शील सदाचार भी है। चरित्र निर्माण के बिना न साधना हो सकती है और न परमेश्वर का ज्ञान ही होना संभव है।

भगवान् श्रीरामने अपने शील द्वारा सद्गुणों को प्रोत्साहित और दुर्गुणों को निस्सारित किया है, यही

(६६)

अवलोकन करने योग्य है। हमलोगों को भी यही करना चाहिए। अपने पवित्र आचार और चरित्र द्वारा ही जगत् का सच्चा कल्याण कर सकते हैं। निम्बार्कचार्यने चरित्र निर्माण को प्रथम भक्ति सोपान कहा है।



रामजी को गाय-गाय, रामको रिझाव रे।
रामजीके चरन-कमल चित्त माहिं लाव रे ॥



जय सियाराम जय जय हनुमान ।
संकटमोचन कृपा निधान ॥



सेतु-बन्धन में श्रीरामकी धर्मशीलता



जब विभीषणजी को भगवान् श्रीराम ने अपनी शरण में ले लिया तब विभीषणजी अत्यन्त दिलचस्पी के साथ भगवान् रामका कार्य करने लगे। भगवान् श्रीराम को अपनी सम्पत्ति देते हुए विभीषणजी ने कहा—“समुद्र पर सेतु बाँधना परमोचित है, नहीं तो लंकापुरी में हमलोगों की सेना प्रवेश नहीं कर सकेगी। पहले तो हमलोगों को समुद्र से मार्ग देने का अनुरोध करना चाहिए और बाद में पुल बाँधने की व्यवस्था करनी चाहिए।”

भगवान् श्रीराम स्वभाव से ही धर्मशील हैं, अतः उन्हें विभीषण की यह सम्मति बहुत अच्छी लगती है। वे समुद्र के तट पर कुश विछाकर बैठ जाते हैं। तीन दिनों तक वे बैठे ही रह जाते हैं, लेकिन समुद्र कुछ भी ध्यान नहीं देता है। भगवान् श्रीराम उस पर कुपित हो उठते हैं। वे लक्ष्मण से कहते हैं—“समुद्र को बड़ा अहंकार हो गया है। शक्ति, क्षमा, सरलता और मधुर भाषण—ये जो सत्पुरुषों के गुण हैं, इनका गुणहीनों पर प्रयोग करने से वे गुणवान् पुरुष को असमर्थ समझने लगते हैं। अपनी प्रशंसा करने वाले और कठोर व्यवहार करने वाले का लोग सत्कार करते हैं। वे शांति और सरलता का महत्त्व ही नहीं जानते हैं। अब यह दुष्ट समुद्र सज्जनता से कुछ नहीं सुनेगा। इसे क्षमा करना

उचित नहीं।” ऐसा कहकर भगवान् श्रीरामने धनुष ले लिया और प्रलयाग्नि के समान प्रज्ज्वलित एक बाण उस पर चढ़ाया। उसकी ज्वाला से सागर के जल का महावेग सहसा अत्यन्त भयंकर हो गया। वह बड़ी-बड़ी तरंग-मालाओं से व्याप्त हो उठा। उसमें धुँआ उठने लगा, उसके निवासी व्याकुल हो उठे, सारे संसार में अन्धकार छा गया और किसी को दिशाओं का ज्ञान न रहा। सूर्य और चन्द्रमा की गति मन्द पड़ गयी। आकाश में उल्कापात होने लगा और अन्तरिक्ष में गड़गड़ाहट के साथ वज्रपात होने लगा। वायु बड़े वेग से बहने लगी और बड़े-बड़े वृक्षों और पर्वतों के शिखरों को खण्डित कर गिराने लगी। विद्युत् भयंकर शब्द कर अग्नि की वर्षा करने लगी।

अब सागर स्वयं मूर्तिमान होकर प्रकट हो गया। उसने धनुर्धर भगवान् श्रीराम से हाथ जोड़कर कहा—“सौम्य ! आकाश, वायु, जल, तेज और पृथ्वी अपने स्वभाव में स्थित रहते हैं, वे अपने सनातन मार्ग को नहीं छोड़ते। मेरा भी यही स्वभाव है कि मैं अगाध हूँ। आपकी सेना में विश्व-कर्मा का पुत्र नल नामका वानर शिल्पकला में निपुण है। यह महान् उत्साही वानर अपने पिता के समान ही शिल्पी है, अतः मेरे ऊपर पुल-निर्माण करने में समर्थ है।”

नलने भगवान् श्रीराम से कहा—“समुद्रने मुझे अपनी शक्ति का स्मरण करा दिया है। मैंने बिना पूछे आपको अपने गुणों की बातें नहीं कहीं, इसलिए अब तक चुप रहा। मैं सागर पर पुल बांधने में समर्थ हूँ। सब वानर पुल बाँधने का कार्य आज से ही आरम्भ कर दें।”

अब भगवान् श्रीराम की आज्ञा पाकर वानर उत्साह-

(७२)

पूर्वक बड़ी-बड़ी पर्वत-शिलाओं को समुद्र के किनारे लाकर नल को देने लगे। नल के द्वारा शिला-खण्डों को फेंकने से समुद्र का जल आकाश में उठ जाता था, पर पुनः वहाँ से नीचे गिर पड़ता था। इस प्रकार कपिश्रेष्ठ नलने शिलाखण्डों से समुद्र पर पुल का निर्माण कर दिया। सब वानर गर्जना करते हुए उस अद्भुत पुल को देखने लगे और वह विशाल बाहिनी पुल बनाते-बनाते समुद्र के उस पार पहुँच गयी।

वाल्मीकि रामायण तथा कंबनरामायण में सेतु-बंधन का वर्णन बहुत ही विस्तारपूर्वक है। महाकवि कंबन की रामायण के अनुसार वानर घने जंगलों में से हजारों-लाखों विशाल वृक्षों को उखाड़-उखाड़कर लाते और कुछ बलशाली वानर पहाड़ियों को ही उठा लाते। नल के निरोक्षण और आदेश के अनुसार ही वानर काम करते। वे वानरगण पहाड़ियों को समुद्र में डालते गए, ऊपर पेड़ों को रखते गए, उनके ऊपर पत्तों को फैलाकर समतल मार्ग बनाते गए। उनके दबाव से उठ-उठकर लहरें आसमान को छूने लगीं। काम करते समय अर्थात् पुल बनाते समय जो शोर मचा होता था, उससे समुद्र की आवाज सुनाई नहीं देती थी। पुल बनाने में समुद्र भी सहयोगी था। भगवान् को इच्छा का विरोध कौन कर सकता है? देखते-देखते पुल का निर्माण हो गया। देव-गंधर्वों को भी इसका निर्माण देखकर बड़ा विस्मय हुआ। वे पुष्पवृष्टि करने लगे और श्रीराम विजयी हों" का घोष करने लगे। ऋषियोंने भी श्रीराम को बार-बार आशीर्वाद दिया।

कंबन रामायण के अनुसार ही यहाँ चर्चा कर रहा हूँ। श्री राम की सारी सेना समुद्र पार करने को आगे बढ़ी।

हनुमान ने श्रीराम को अपने कंधे पर बिठा लिया। लक्ष्मण को अंगदजीने अपने कंधे पर बिठाया। वानरों की गति असामान्य थी। प्रभु की लीला कौन जान सकता है ? देखते-देखते ही सारी सेना समुद्र पार करके सागर के दूसरे किनारे पर पहुँच गई।

यहाँ पर एक वेदान्त-तत्त्व का दर्शन दीखता है। समुद्र के निवेदन तथा कार्य में वेदान्त दर्शन ही दिखाया गया है। पृथ्वी, वायु, आकाश, पानी और अग्नि ये पंच महाभूत अपनी-अपनी प्रकृति का ही अवलम्बन लेते हैं। अनादि काल से ये अपनी प्रकृति के अनुसार ही कार्य करते चले आ रहे हैं। समुद्र ने भी अपनी प्रकृति अर्थात् अपने शाश्वत धर्म की बात कही है कि उसका पानी सूखकर पत्थर कैसे बन जाय और उसकी गहराई बिल्कुल कम कैसे हो जाय ? इसीलिए उसने अपने ऊपर पुल बनाने का सुझाव उचित ही दिया। समुद्र के कथन का तात्त्विक दर्शन यह है कि प्रकृति और ईश्वर का सम्बन्ध अनादिकाल से है। प्रकृति, जीव तथा जड़ वस्तुएँ ईश्वर से सृजित होकर अपनी-अपनी नियति के अनुसार चलती आ रही हैं अर्थात् प्रकृति तथा जीव आदि अपने-अपने धर्म के अनुसार ही ईश्वर की अध्यक्षता में काम करते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता ६।१० में भगवान् श्रीकृष्णाने भी यही बात कही है—

“मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सवराचरम्”

इस प्रकार यहाँ यह दर्शाया गया है कि जब तक भगवान् का सहारा नहीं मिलता तब तक जड़ प्रकृति कुछ भी नहीं कर सकती है। भगवान् की प्रेरणा से ही प्रकृति कार्य करती

है। भगवान् की जब प्रेरणा हुई तो देखते-देखते पुल का निर्माण हो गया। समुद्र भी अनुकूल काम करने लगा। इसमें भगवान् ने अपनी प्रभुता तथा मर्यादा की शिक्षा दी है, यही सूक्ष्म दर्शन है।



रामनाम मनिदीप धर जीह देहरीं द्वार ।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ जौं चाहसि उजिआर ॥

श्रीरामकी शरणागतवत्सलता



सभी अवतारों में भगवान् श्रीराम की शरणागत-वत्सलता सबसे अधिक प्रसिद्ध है। बहुत से संतों का कहना है कि रामभक्ति शरणागतिभक्ति ही है। तुलसीदासजी की दासभक्ति शरणागतिभक्ति ही है। तुलसीदासजीने अपने समस्त साहित्य में यह सिद्ध किया है कि भगवान् राम जैसा कोई उदार नहीं और उनकी तरह कोई शरणागतवत्सल नहीं हो सकता। मैं इस प्रसंग में विभीषण की शरणागति में प्रभु की महाउदारता का प्रकाश प्रस्तुत करना चाहता हूँ।

विभीषण का शरीर सुमेरु पर्वत के शिखर के समान था। वे आकाश में चमकती हुई विद्युत के समान जान पड़ते थे। उनके साथ जो चार अनुचर थे, वे भी बड़े बलशाली थे। धर्महिमा विभीषण को चार राक्षसों के साथ देखकर वानरराज सुग्रीवने हनुमान आदि बुद्धिमान वानरों से कहा—

“क्या यह अस्त्र-शस्त्रों से सम्पन्न निशाचर हमें मारने के लिए आ रहा है?”

सुग्रीव की यह बात सुनकर वे सभी वानर साल वृक्ष और पर्वत की शिलाएँ उठाकर बोले—“राजन् ! आप हमें इन दुरात्माओं को वध करने की आज्ञा दीजिए।”

(७६)

महाबुद्धिमान विभीषण ने आकाश में ही स्थित होकर वानरराज सुग्रीव और अन्य वानरों से कहा—‘मैं निशाचरराज रावण का छोटा भाई विभीषण हूँ। मैंने भाँति-भाँति के युक्तिसंगत वचनों द्वारा उसे बारम्बार देवी सीता को लौटाने के लिए समझाया था, किन्तु उसने मेरी बात नहीं मानी। यद्यपि मैंने उसके हित के लिए ही सब बातें कही थीं, तथापि लंकेश काल के वशीभूत होने के कारण उचित सम्मति को वैसे ही नहीं मानता है, जैसे मरणासन्न मनुष्य औषधि नहीं लेता। उसने मुझे बहुत से कठोर वचन कहकर मेरा अपमान किया है। मैं स्त्री और पुत्रों को लंका में छोड़कर भगवान् श्रीराम की शरण में आया हूँ। जो समस्त लोकों को शरण देनेवाले हैं, उन सर्वेश्वर श्रीरामको मेरे आगमन की सूचना दे दीजिए और उनसे कहिए कि शरणार्थी विभीषण सेवा में उपस्थित है।’

विभीषण की बात सुनकर वानरराज सुग्रीवने रघुवंश शिरोमणि श्रीराम से कहा—

“प्रभो ! आज एक राक्षस, जो हमारे शत्रु रावण की सभा में सम्मिलित था, अकस्मात् यहाँ आया है। मुझे ऐसा लगता है कि वह अनिश्चित समय पर हमलोगों को उसी तरह मार डालेगा, जिस तरह उल्लू रात्रि में कौबों का सहारा करता है। हमलोगों को गुप्तचरों के विषय में सावधान रहना चाहिए। सभी राक्षस मनमाना रूप धारण करने में पूर्ण समर्थ हैं। इनमें अन्तर्धान होने की भी अवश्य शक्ति होती है। राक्षस कुटिल, शूरवीर और मयावी होते ही हैं। अतः हमलोगों को राक्षसों पर कभी विश्वास नहीं करना चाहिए। यदि यह राक्षस विभीषण रावण का गुप्तचर हो तो

(७७)

निश्चय ही यह हमलोगों में राग-द्वेष और फूट उत्पन्न करेगा । जब हमलोग इस पर पूर्ण विश्वास कर लेंगे और इसकी ओर से निश्चिन्त हो जायेंगे तब यह हमलोगों का अवश्य ही अनिष्ट करेगा । मुझे ऐसा अनुमान लगता है कि विभीषण दुष्ट राक्षसराज रावण द्वारा ही गुप्तचर के रूप में भेजा गया है और इसे बाँधकर ही रखना चाहिए । गोस्वामी तुलसीदासजी के शब्दों में सुग्रीव की वाणी देखिए :—

“जानि न जाइ निसाचर माया ।

काभरूप केहि कारन आया ॥

भेद हमार लेन सठ आवा ।

राखिअ बाँधि मोहि अस भावा ॥”

ऐसे स्थल पर भले ही वाल्मीकि तथा तुलसीदासजी की वर्णन-शैली भिन्न है, लेकिन दोनोंने शरणागति भाव पर अपने हृदय का अनुपम सौन्दर्य सागर ही बहाया है । वाल्मीकि-रामायण के अनुसार वानरराज सुग्रीव के वचन सुनकर कृष्णासिन्धु महात्मा श्रीराम बोले—“मित्रो ! वानर-राज सुग्रीवने विभीषण के विषयमें जो युक्तियुक्त बात कही है, वह आपलोगोंने सुन ली है । अब मैं आपलोगों से निवेदन करता हूँ कि आपलोग अपने-अपने विचार प्रकट करें ।” श्रीराम के लिए वाल्मीकिजीने “महात्मा” शब्द का ही प्रयोग किया है, लेकिन तुलसीदासजीने सर्वत्र “भगवान्” शब्द का प्रयोग किया है ।

अंगद अपनी सम्मति देते हुए बोले—“विभीषण शत्रु के पास से आया है, अतः गुण-दोष का विचार कर पहले यह निश्चय कर लेना चाहिए कि इस व्यक्ति से लाभ है या हानि

है ? यदि इससे लाभ है तो इसे शरण देनी चाहिए और यदि इससे केवल हानी है तो इसे अवश्य त्याग देना चाहिए ।”

शरभने कहा - “इसके ऊपर कोई गुप्तचर नियुक्त कर देना चाहिए जो इसके गुण-दोषों की परीक्षा कर ले ।”

जाम्बवानने कहा - “हमें इससे सदा सावधान ही रहना चाहिए ।”

मैन्दने कहा - “इससे मधुर व्यवहार कर लका के विषय में सारी बातें जान लेनी चाहिए ।”

हनुमानने कहा - “प्रभो ! आप बुद्धिमानों में श्रेष्ठ, सामर्थ्यशाली और वक्ताओं में उत्तम हैं बृहस्पति भी आपसे बढकर बुद्धिमान नहीं हैं । मैं तो कार्य की गृहता पर दृष्टि डालकर जो यथार्थ समझूँगा, वही आपकी सेवा में निवेदन करूँगा । विभीषण के यहाँ आने का यही उत्तम काल है । वह एक नीच पुरुष के पास से एक श्रेष्ठ पुरुष के पास आया है । उसने दोनों के दोषों और गुणों का निश्चय ही विवेचन किया है । अतः उसका यहाँ आगमन सर्वथा उचित है और उसकी उत्तम बुद्धि के अनुरूप है । किसी दूसरे के मन की बात को सहसा समझ लेना आसान नहीं है । स्वर-भेद से यह निश्चय नहीं हो सकता है कि यह साधु है या असाधु है । किन्तु इससे वार्तालाप करने से इसमें दुर्भाव नहीं दीखते हैं । इसका मन प्रसन्न है । मेरे मन में इसके प्रति कोई सन्देह नहीं है । दुष्ट पुरुष निःशंक होकर महात्माओं के सामने कभी नहीं आ सकता है । कोई अपने को कितना ही क्यों न छिपावे उसके हृदय का भाव प्रकट हो ही जाता है । इसके मन में यह विश्वास है कि आप सरणागतवत्सल, दयालु हैं और इसकी रक्षा अवश्य करेंगे । अतः मेरे जानते इसे अपनी शरण में

रखना आपको उचित है।” इस प्रकार की चर्चा वाल्मीकि रामायण में है।

कम्बन रामायण में हनुमानजीने जो कहा, वह अत्यन्त सुन्दर और स्पष्ट है, उसे भी देखा जाय। हनुमानजी समझ गए कि भगवान् श्रीराम उनका भी मत सुनना चाहते हैं। अत्यन्त मधुर एवं विनम्र वाणीमें हनुमानजी बोले—“प्रभो ! आप हमसे क्यों अभिप्राय माँगते हैं ? बृहस्पति भी आपसे अधिक समझदार नहीं हो सकते। अभी हमारे मित्रोंने जो कहा, उससे मैं सहमत नहीं हूँ। मैं तो सोचता हूँ कि विभीषण को अपने पक्ष में शामिल करने में कोई खतरा नहीं है। यदि वह हमलोगों का अहित करना चाहता तो वह छिपकर आता और इस प्रकार खुल्लमखुल्ला कभी नहीं आता। हमारी सम्मति में गुप्तचर नियुक्त करने की कोई आवश्यकता नहीं है। कुछ हमारे मित्र कहते हैं कि शत्रु-पक्ष से जो इस प्रकार अचानक हमलोगों के पास आ जाता है, उस पर विश्वास कैसे किया जाय ? ठीक है। किन्तु यदि कोई अपने भाई के दुर्गुणों को देखकर उसे चाहना छोड़ दे तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है ? आपकी उदारता तथा महिमा से विभीषण प्रभावित है। आपको शरणागति का महत्त्व उसे मालूम है। कुछ मित्र विभीषण पर शका करते हैं और उसकी परीक्षा लेने के लिए कहते हैं, यह बात मुझे उचित नहीं जान पड़ती है। क्योंकि जब कोई व्यक्ति जान लेता है कि उसकी बातों पर शका कर रहे हैं, तब उसका व्यवहार अस्वाभाविक हो जाता है अर्थात् उसका स्वभाव कुछ विकृत हो जाता है। मैंने विभीषण को देखा है। उसके भोले-भाले चेहरे पर कपट के कोई चिह्न नहीं दीखते हैं।

आन्तरिक भावों को छिपाना बहुत कठिन होता है। मैं तो यही समझता हूँ कि विभीषण और उसके भाई रावण में भारी मतभेद हो गया है। विभीषण का लंका में रहना दुष्कर हो गया है और इसी कारण से वह आपकी शरणागति चाहता है। उसे यह भी पता है कि रावण आपसे हार जानेवाला है। उसने यह भी सुना होगा कि आपने बालि का वध करके सुग्रीव को राज्य दिलाया है। रावण के बाद यदि विभीषण लंका का राज्य चाहता हो तो इसमें भी कोई अनुचित नहीं है और न आश्चर्य करने की आवश्यकता ही है। मैं तो कहता हूँ कि कृपया उसे अपनी शरण में ले लें। अपनी अल्प बुद्धि में जो बात सूझी, वह मैंने बता दी। आप जो निर्णय करें वह हम सबों के लिए मान्य होगा।”

इस प्रकार वानरोंने विभीषण के बारे में भिन्न-भिन्न मत व्यक्त किये।

भगवान् श्रीरामने सबकी बातें सुनी। शरणागतों की रक्षा करना भगवान् का सहज स्वभाव ही है। शरणागतों में कुछ दोष भी हो तो उन दोषों को वे नहीं देखते।

हनुमान के मुख से अपने ही मन की बात सुनकर भगवान् श्रीराम का हृदय प्रसन्नता से भर गया। उन्होंने अपने शरणागत स्वभाव की विशेषता प्रकट करते हुए कहा—

“सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।

अभयं सर्वभूतेभ्यो ददामि एतद्व्रतं मम॥”

(वाल्मीकि रामायण ध्रुवकांड १८।३३)

अर्थात् एकबार भी जो मेरी शरण में आकर यह कहता है कि “हे भगवन् ! मैं आपकी शरण हूँ, आपका दास हूँ।”

तो उसे मैं सदा के लिए अभयदान दे देता हूँ, यह मेरा जीवन वत है। जो किसी भाव से मेरी शरण में आता है, उसे मैं कभी नहीं त्यागता हूँ। मेरे पास आना ही मेरी शरण में आना है। सम्भव है, उसमें कुछ दोष भी हो तो दोष देखना मेरा स्वभाव नहीं है। दोषी को भी शरण देना सत्पुरुषों का सहज स्वभाव है। मैं विभीषण की शरणागति की हार्दिक पुकार जानता हूँ। वह डरकर मेरे पास आया है। शरणागत धर्म की व्याख्या करते हुए भगवान् श्रीराम कहते हैं कि “शत्रु दुःखी हो या अभिमानी, यदि वह अपने विपक्षी को शरण में आता है तो विपक्षी को प्राण देकर भी उसे अपनी शरण में रखना चाहिए तथा उसकी सभी प्रकार से रक्षा करनी चाहिए। भय, मोह अथवा किसी कामना से यदि वह यथाशक्ति उस शरणागत की रक्षा नहीं करता है तो उसके उस पाप-कर्म की लोक में निन्दा होती है। यदि शरण में आया हुआ पुरुष संरक्षण न पाकर उस रक्षक के देखते-देखते नष्ट हो जाय तो वह उसके सारे पुण्यों को अपने ही साथ ले जाता है।” (वाल्मीकि रामायण युद्धकांड)

श्रीरामचरिसमानस में शरणागत धर्म के विषय में भगवान् श्रीराम कितना बल देते हुए, विश्वास दिलाते हुए कहते हैं—

“कोटि विप्र बध लागहि जाहू ।

आएँ सरन तजउँ नहिं ताहू ॥

सनमुख होई जीव मोहि जबहीं ।

जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं ॥

सुनहु सखा निज कहउँ सुभाऊ ।

जान भुसुंडि संभु गिरिजाऊ ।
जों नर होइ चराचर द्रोही ।
आवै सभय सरन तकि मोही ॥
तजि मद मोह कपट छल नाना ।
करऊँ सद्य तेहि साधु समाना ॥”

(श्रीरामचरितमानस सुन्दरकांड)

भगवान् श्रीराम के वचन सुनकर सुग्रीवने कहा—“धर्मज्ञ प्रभो ! आपने जो यह श्रेष्ठ शरणागत धर्म की बात कही है, सदा प्रशंसनीय है । आप महान् शक्तिशाली और सन्मार्ग पर स्थित हैं । अब विभीषण हमारे मित्र हैं ।”

वानरराज सुग्रीव की बात सुनकर भगवान् श्रीराम विभीषण से सप्रेम मिलने के लिए प्रस्तुत हो गए ।

विनयशील महाबुद्धिमान् विभीषण भगवान् श्रीरामके चरणों में गिर पड़े । उन्होंने श्रीराम से धर्मानुकूल, युक्तियुक्त, समयोचित और हर्षवर्द्धक वचन कहा—“भगवन् ! मैं रावण का छोटा भाई हूँ । उसने मेरा अपमान किया है । आप प्राणियों को शरण देनेवाले हैं । मैंने आपकी शरण ली है । मैं मित्र, धन, स्त्री, पुत्र और लंकापुरी को छोड़कर आपकी शरण में आया हूँ । अब मेरा जीवन और सुख आपके ही अधीन हैं । प्रभो ! ब्रह्माजी के वरदान के प्रभावसे दशमुख रावण मनुष्य के अतिरिक्त किसी के द्वारा बाध्य नहीं है । मेरा बड़ा भाई कुम्भकर्ण महातेजस्वी और इन्द्र के समान पराक्रमी है । रावण का पुत्र इन्द्रजित अबध्य कवच धारणकर युद्ध में अदृश्य होकर शत्रुओं पर प्रहार करता है । रावण के सेनापति

लोकपालों के समान बलवान हैं। उनकी सहायता से राजा रावणने देवताओं पर विजय पायी है।”

भगवान् श्रीरामने कहा—“विभीषण ! तुमने रावण के युद्ध-विषयक जिन-जिन पराक्रमों का वर्णन किया है, उन्हें मैं जानता हूँ। मैं रावण और उसके साथियों का वध करके तुम्हें लंका का राजा बनाऊँगा। रावण पाताल में या पितामह ब्रह्माजी के पास ही क्यों न चला जाय, अब वह मेरे हाथों बच नहीं सकता।”

विभीषणने कहा—“प्रभो ! राक्षसों के संहार और लंकापुरी पर आक्रमण करने में आपकी यथाशक्ति सहायता करूँगा।”

विभीषण के ऐसा कहने पर भगवान् श्रीरामने उन्हें हृदय से लगाया और प्रसन्न होकर लक्ष्मण से कहा—“तुम समुद्र से जल ले आओ और विभीषण को लंकाका राज्याभिषेक कर दो।

उनके ऐसा कहने पर सुमित्रानन्दन लक्ष्मणने विभीषण को लंका का राज्याभिषेक कर दिया। भगवान् श्रीरामका अपार अनुग्रह देखकर सब वानर हर्षध्वनि करने लगे और भगवान् की जय मनाते लगे।

सारे वैष्णवाचार्योंने विभीषण की शरणगति को बहुत महत्त्व दिया है। वैष्णव सम्प्रदाय का सबसे बड़ा प्रधान सिद्धान्त भगवान् की शरणगति ही है। सभी वैष्णव अन्तिम बात यही बताते हैं कि चाहे कैसा भी अधम, दुराचारी, कदाचारी हो, भगवान् की शरण में जाते ही उसके सारे पाप जलकर नष्ट हो जाते हैं और उसकी गणना महात्मा में होने लगती है। विभीषण के लिए वाल्मीकि रामायण में सर्वत्र “महात्मा” शब्द का ही प्रयोग किया गया है।

(८४)

सबसे बड़ी बात तो यह है कि सभी वैष्णवाचार्यों ने “प्रभुशरणागति” को सबसे ऊँचा स्थान दिया है। गीता, ब्रह्मसूत्र और उपनिषदों का अर्थात् प्रस्थानत्रयी का सारसम्बुचय भगवान् की शरणागति ही है। श्रीशंकराचार्य, स्वामी श्रीरामानुजाचार्य, स्वामी श्रीवल्लभाचार्य, आचार्य श्रीधर स्वामी तथा पण्डित श्रीमधुसूदन सरस्वती आदि सबों ने प्रभु की शरण जाने के लिए ही आदेश दिया है। भक्ति की पराकाष्ठा शरणागति ही है। सारे दार्शनिक सिद्धान्तों का पर्यवसान भगवान् की शरणागति में ही है। सारे योग शरणागति में ही लय हो जाते हैं। शरणागति का रहस्य जानने के लिए इस लेखक की पुस्तक “भगवत्तत्त्व-मीमांसा” देखनी चाहिए।



❧ सर्वमान्यादर्श श्रीराम ❧



सम्पूर्ण भारतीय समाज के लिए भगवान् श्रीराम का चरित्र परमादर्श तथा सर्वमान्यादर्श है। उत्तर में श्रीगुरु-गोविन्द सिंहजीने 'रामकथा' लिखी है, दक्षिण में महाकवि कम्बन द्वारा लिखित 'कम्बनरामायण' अतिशय भक्तिपूर्ण रसमय ग्रन्थ है। पूर्व में 'कृत्तिवास रामायण' चलती है और पश्चिम में भावार्थरामायण चलती है। हिन्दी में गोस्वामी तुलसीदासजी की रामायण 'श्रीरामचरितमानस' सर्वत्र प्रसिद्ध है। मनुष्य के जीवन में आनेवाले सभी सम्बन्धों को पूर्ण एवं उत्तमरूप से निभाने की सर्वोपरि शिक्षा देनेवाले श्रीराम के समान किसका चरित्र हो सकता है? अर्थात् श्रीराम के जैसा महान् आदर्श चरित्रवाला कोई अन्य अवतार भी नहीं है। उनका चरित्र तथा पराक्रम सम्पूर्ण भारत की एकता का अनुपम प्रत्यक्ष चित्र ही है। आदि कवि महर्षि वात्मीकिने उनके सम्बन्ध में कहा है कि वे गाम्भीर्य में समुद्र के समान और धैर्य में हिमाचल के समान हैं—'समुद्र इव गाम्भीर्ये, धैर्येण हिमवानिव' इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग करके उन्होंने हम सबों के सामने यह बात प्रस्तुत की है कि आसेतु-हिमाचल भारत के लिए श्रीराम प्रभु सदा परमादर्श के रूप में विद्यमान हैं। हमलोगों के बीच में वे सदा से हैं और भविष्य में वे सदा ही रहेंगे। वे शाश्वत और नित्य हैं। उनका चरित्र भी शाश्वत और नित्य है। उनका चरित्र ही बताकर

यह कहना चाहता हूँ कि वे सर्वमान्यादर्श हैं। मनुष्य को जीवन में हताश न होना चाहिए, न घबड़ाना चाहिए और न व्याकुल होना चाहिए। यह उत्तमोत्तम संदेश भगवान् श्रीराम के चरित्र द्वारा अवश्य ही देखा जा सकता है। हाँ, उनकी भक्ति द्वारा भी चरित्रोत्थान अवश्य होता है। श्रीमद्-भागवत ३।२५।१६ में भगवान् कपिल ने सत्य ही कहा है कि भगवान् की भक्ति चरित्रोत्थान के लिए महत्त्वपूर्ण है। बहूत से महापुरुषोंने यह भी कहा है कि जीवमात्र के कल्याण की भावना भी भक्ति ही है, किसी को किसी प्रकार का कष्ट प्राप्त न हो - ऐसा आचरण करना भी भक्ति ही है। ऐसा आचरण करनेवाला अवश्य ही महान् है। श्रीमद्भागवत ३।२५।२१ में यह बताया गया है कि जो सहनशील, प्राणिमात्र से प्रेम करनेवाले, दयालु और ज्ञान्त चित्तवाले हैं, वे ही महान् हैं। श्रीराम में सारे मानवीय गुणों को वाल्मीकि, कम्बन आदि महान् कवियोंने दर्शाया है, भले ही तुलसीदासजी आदि अनेक ऋषियोंने उनके गुणों को अगाध एवं अनन्त भी बताया है। उनके आदर्श गुणों की चर्चा करने की चाह मेरी वंसी ही कही जा सकती है जैसे कोई छोटी बिल्ली विशाल सागर को अपनी जीभ से चाट जाना चाहती है। लेकिन जैसे हाथी मृत हो या जीवित दोनों अवस्थाओं में अपना मूल्य रखता है। वैसे ही चर्चा चाहे अधिक हो या कम हो दोनों अवस्थाओं में जीवमात्र के लिए उपादेय एवं कल्याणकर ही सिद्ध होगा।

श्रीराम का सारा चरित्र धर्ममय तथा मर्यादामय है। मर्यादा का कहीं भी खण्डन नहीं है। इस प्रसंग में 'उपासनात्रय सिद्धान्त' ग्रन्थ में ऐसा लिखा है कि श्रीजानकीजीने

(८७)

एक बार भगवान् श्रीराम से रास करने का प्रस्ताव प्रस्तुत किया। इसपर भगवान् श्रीरामने कहा कि 'तुम्हारा ही अंश जब राधा के रूप में होगा और मेरा अंश श्रीकृष्ण के रूप में होगा, तभी रास की लीला होगी।' 'विश्वम्भर उपनिषद्' में महाशम्भुने शांडिल्य ऋषिसे यह कहा है कि सारे अवतारों में श्रीराम का चरित्र ही सबसे अधिक मंगलकारी तथा मनुष्य-मात्र के लिए सर्वाधिक अनुकरणीय है। उनका नाम सारे भगवन्नामों का परम प्रकाशक है। 'महाशम्भु संहिता' में जानकीजी कहती हैं कि अनादिकाल से रामनाम की अपार महिमा है जिसकी थाह कोई भी नहीं पा सकता है। यहाँ हमें श्रीराम को सभी दृष्टिकोणों से परमादर्श सिद्ध करना है। श्रीराम सबको प्यार करते। उनके समक्ष कुछ भी भेदभाव नहीं। उनके जैसा विशाल हृदय वाला किसी युग के इतिहास में खोजने पर भी कोई नहीं मिल सकता है। आइए, अब उनका विशाल हृदय-आँख खोलकर देखिए :—

भगवान् रामको वनवास हो गया है। सीता और लक्ष्मण के साथ वे वन को जा रहे हैं। दशरथ के मंत्री सुमंत्र के साथ वे श्रृंगवेरपुर पहुँचे हैं। गंगा में स्नान करके बैठे हैं। निषादराज गुह को जब खबर मिलती है तो वह आनन्दित होकर फल-मूल लेकर अपने प्रियजनों और भाई बन्धुओं के साथ भगवान् से भेंट करने के लिए आता है। भगवान् श्रीराम उसे स्नेह से अपने पास बैठाने हैं और कुशल पूछते हैं। निषादराज एक जशोक के पेड़ के नीचे कुश और कोमल पत्तों की कोमल और सुन्दर साथरी सजाकर बिछा देते हैं और पवित्र, मीठे और कोमल फल-फूल तथा पानी दोनों में भरकर रख देते हैं। भगवान् श्रीराम वही कन्द-

मून-फल खाकर उसी साथरी पर परम तोषपूर्वक अनुपम सुख के साथ लेट जाते हैं। उनका चरित्र देवलोक के लिए नहीं, इसी धरती के मनुष्यों के लिए है। राम सबको आराम देने वाले हैं। इसीलिए 'रामो रमयतां वरः' कहा जाता है। केवल मनुष्यमात्र को ही नहीं, वे प्राणिमात्र को आनन्द देने वाले हैं। महाभारत के शान्तिपर्व २६६।२० में कहा गया है—'न मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्' अर्थात् मनुष्य के समान श्रेष्ठ कोई नहीं है।

भगवान् श्रीराम गंगा तट पर आकर गंगा पार करना चाहते हैं। केवट से नाव माँगते हैं। केवट की शर्त है कि वह बिना पाँव धोये भगवान् श्रीराम को नाव पर चढ़ाने के लिए प्रस्तुत नहीं है क्योंकि उसके मन में यह शंका है कि उसकी नाव भी अहिल्या की तरह स्त्री बन गई तो ! भगवान् उसके हृदय के स्वच्छ प्रेम को भलीभाँति समझ रहे हैं। वे उसकी बात स्वीकार कर लेते हैं। केवट कठौते में जल भरकर लाता है एवं भगवान् के परम पावन चरण धोकर उस जल को सारे परिवार में पीने के लिए वितरण कर देता है। भगवान् गंगा के इस पार आकर संकोच में पड़ जाते हैं कि केवट को उतराई तो दी ही नहीं। पातिव्रतशिरोमणि सीताजी भगवान् का रुख जानकर अपनी रत्नजटित अँगूठी उतारकर उस केवट को देती हैं, पर वह लेता नहीं है।

अत्यधिक प्रेम के कारण निषाद भगवान् श्रीराम का साथ छोड़ता नहीं है। भगवान् उसे वापिस जाने के लिए कहते हैं, परन्तु वह कुछ दिन साथ रहने की अभीप्सा प्रकट करता है। भगवान् के स्वभाव की यह सबसे बड़ी विशेषता है कि वे अपने प्रेमी भक्तों की रुचि अवश्य पूर्ण करते हैं।

अतः वे उसे साथ रख लेते हैं। कुछ दिन बाद प्रेमाग्रह के साथ उसे वापिस करते हैं। यह उनके आदर्श प्रेम की कहानी है।

भगवान् श्रीराम घूमते-घूमते महर्षि वाल्मीकिजी के आश्रम पर आते हैं। अतिथि-सत्कार के बाद श्रीराम वाल्मीकिजी से अपने रहने के लिए स्थान पूछते हैं। तत्त्वज्ञ वाल्मीकिजी भगवान् से मित्र-भिन्न प्रकार के भक्तों के हृदय में बसने के लिए कहते हैं। देखिए :—

“सुनहु राम अब कहउँ निकेता ।
जहाँ बसहु सिय लखन समेता ॥
जिन्हके श्रवण समुद्र समाना ।
कया तुम्हारि सुभग सरि नाना ॥
भरहि निरंतर होहि न पूरे ।
तिन्हके हिय तुम्ह कहूँ गृह रूरे ॥
लोचन चातक जिन्ह करि राखे ।
रहहि दरस जलधर अभिलाषे ॥
निदरहि सरित सिंधु सर भारी ।
रूप बिंदु जल होहि सुखारी ॥
तिन्हके हृदय सदन सुखदायक ।
बसहु बंधु सिय सह रघुनायक ॥
दोहा-जाहि न चाहिए कबहुँ कछु,
तुम्ह सन सहज सनेहु ।

(६०)

बसहु निरंतर तासु मन,
सो राउर निज गेहु ॥”

(श्रीरामचरितमानस अयोध्याकांड)

इसके उपरान्त मनीषि वाल्मीकि श्रीराम को चित्रकूट में बसने के लिए कहते हैं। चित्रकूट में चारों ओर कोल-भील रहते हैं। भगवान् श्रीराम का आगमन सुनकर वे बड़े प्रसन्न होते हैं। तथा उनके विश्राम के लिए प्रेम से पत्तों और घासों के घर बना देते हैं। प्रेम के उत्साह में वे विभोर हैं और अपने को धन्य-धन्य मानते हैं। वे कहते हैं—

“हम सब धन्य सहित परिवारा ।

दीख दरसु भरि नयन तुम्हारा ।”

(श्रीरामचरितमानस अयोध्याकांड)

उस समय चित्रकूट में सर्वत्र आनन्दमय वातावरण परिलक्षित हो रहा है। फूल, फल, वृक्ष सबके सब भगवान् के स्वागत में अत्यधिक हर्षित हैं, देखिए :—

“फूलहिं फलहिं विटप विधि नाना ।

मंजु बलित वर बेलि बिताना ॥

नीलकंठ कलकंठ सुक, चातक चक्र चक्रोर ।

भाँति भाँति बोलहिं बिहंग, श्रवन सुखद चित चोर ॥”

श्रीराम साक्षात् अगाध प्रेम की मूर्ति रूप हैं। वे कोल, भीलों को प्रेम-सागर में अवगाहन करा रहे हैं और स्वयं भी

सबों से प्रेम पाते हुए विभोर अवस्था में दीखते हैं। सारा वातावरण ही प्रेममय है।

तदनन्तर श्रीराम और लक्ष्मण पंपा सरोवर के मार्ग को ओर चल दिये। वे पंपा सरोवर के पश्चिम तट पर जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने शबरी का रमणीय आश्रम देखा। शोभा निखरते हुए वे दोनों भाई सुरम्य आश्रम पर जाकर शबरी से मिले। शबरी सिद्ध तपस्विनी थी। उन्हें आश्रम पर आया देख, वह हाथ जोड़कर खड़ी हो गयी तथा दोनों कुमारों के चरणों में सादर सभक्ति प्रणाम किया। फिर उसने अर्घ्य और आचमन आदि सब सामग्री समर्पित कर उनका विधिवत् सत्कार किया।

भगवान् श्रीरामने धर्म परायण तपस्विनी शबरी से पूछा—“तपोधने ! तुम्हारी साधना के समय कोई विघ्न तो पैदा नहीं होते ? तुम्हें क्रोध आदि तो सन्ताप नहीं देते ? तुमने भक्ति के जिन नियमों को स्वीकार किया है, वे सभी नियम निर्विघ्न निभ तो जाते हैं न ? तुम्हारे मन में तपस्या के कारण सुख और शान्ति तो है न ? तुमने जो गुरुजनों तथा सन्तों की सेवा की है, वह पूर्णरूपेण सफल हो गयी है न ?”

भक्तिभाव के उज्ज्वलतम प्रकाश से पूर्ण या कहिए भक्ति की साक्षात् मूर्ति शबरी बोली—‘मेरे परम प्यारे भगवान् श्रीराम ! आपके साक्षात् दर्शनामृत से मेरी सारी तपस्या सफल हो गई। आज मेरा जन्म सफल हो गया और गुरुजनों की पूजा भी सार्थक हो गई। आपका सत्कार कर अब मैं दिव्य धाम को जाऊँगी। जब आप चित्रकूट में पधारे थे,

उसी समय मेरे गुरुजन यहाँ से दिव्य लोकों में चले गए। उन धर्मज्ञ महाभाग महर्षियों ने जाते समय मुझसे कहा कि तेरे इस परम पवित्र आश्रम पर भगवान् श्रीराम आएँगे। तुम उनका उचित सत्कार करना। उनका दर्शन करने के पश्चात् तुम श्रेष्ठ एवं अक्षय लोक में जाओगी। मैंने आपकी कृपा से आपके लिए ही कुछ कन्द-मूल और फलों का सचय किया है, इन्हें स्वीकार करने की कृपा की जाए।

शवरी को परमात्मा के तत्त्व का ज्ञान प्राप्त हो गया है। वह उनके चरणों में लिपट पड़ती है। दिव्य प्रेम में मग्न हो जाती है। जल लेकर भगवान् का चरण धोती है और पवित्र ऊँचे आसन पर बिठाती है। भगवान् श्रीराम उसके दिए हुए कन्द-मूल और फल प्रेम सहित खाते हैं और उसके मधुर स्वाद की प्रशंसा बार-बार करते हैं मानों इतना सुन्दर मधुर फल कभी उन्होंने खाया ही न हो। शवरी जब उनसे कहती है कि वह तो नीच जाति की अधम है तब भगवान् श्रीराम उससे कहते हैं कि वे तो एक भक्ति का ही सम्बन्ध मानते हैं। जाति, पाँति, कुल, धर्म, बड़ाई, धन, बल, कुटुम्ब, गुण और चतुरता—इन सबके होने पर भी भक्ति से रहित मनुष्य वैसा ही लगता है जैसा जलहीन बादल। जाति-पाँति उनके लिए कोई महत्त्व की बात नहीं है। उन्हें भक्ति ही सर्वाधिक प्यारी है।

तदुपरान्त राम तथा लक्ष्मण दोनों पंपा सरोवर के तट पर आए। वहाँ श्रीरामने 'मतंग सरस' नामक कुण्ड में स्नान किया जिसके तट पर विविध धातुओं से मण्डित ऋष्यमूक पर्वत सुशोभित था जहाँ सुग्रीवजी निवास करते थे। पंपा सरोवर की शोभा देखकर भगवान् श्रीराम को सती

(६३)

साध्वी जनककुमारी सीता का स्मरण हो आया और उनके दर्शन की प्रबल इच्छा जाग उठी ।

श्रीरामने लक्ष्मण से कहा—‘सुमित्रा कुमार ! यहाँ के ऊँचे-ऊँचे वृक्ष अनेक शाखाओं और शिखरों से सुशोभित पर्वतों के समान दीख पड़ते हैं, परन्तु मैं इस समय भरत के दुःख और सीता के हरण की चिन्ता के शोक से संतप्त हो रहा हूँ । यद्यपि यह पंपा मुझे बड़ी सुहावनी लगती है, क्योंकि इसके निकटवर्ती वन बड़े विचित्र, नाना प्रकार के फूलों से सुरम्य हैं तथा यहाँ का जल शीतल और सुखदायी है, किन्तु मैं मानसिक वेदनाओं के कष्ट से ज्यादा पीड़ित हूँ । इस चैत्र के महीने में यहाँ मन्द-मन्द सुखदायिनी हवा फूलों की मनोहर सुगन्ध लेकर चल रही है, जो विरह की वेदना को और प्रज्ज्वलित कर देती है । फूलों से भरी हुई वृक्ष-शाखाओं को हिलाती हुई वायु जब आगे बढ़ती है, तब अपने-अपने स्थान से विचलित हुए भ्रमर उसका यशोगान करते हुए उसके पीछे-पीछे चलने लगते हैं । पर्वतों की कदराओं में जब वायु वेग से ध्वनि के साथ निकलती है तब मानो वह उच्च स्वर से गीत-सा गाती प्रतीत होती है । कोकिलों के कलनाद वाद्य का काम करते हैं और वायु से झूमते हुए वृक्ष नृत्य करते-से प्रतीत होते हैं । वायु के वेगपूर्वक हिंनाने से जो शाखा परस्पर सट जाती है, वह मानो एक दूसरी को प्रेम से आलिंगन करती है । अशोक पुष्प के लाल-लाल गुच्छे अग्नि के अंगार के समान दिखाई देते हैं । जान पड़ता है कि यह वसन्त रूपी आग मुझको जलाकर भस्म कर देगी । जहाँ मेरी प्रिया निवास करती है, मेरी ही तरह शोक करती होगी । मेरा यह दृढ़ निश्चय है कि साध्वी सीता मुझसे अलग रहकर

अधिक काल तक जीवित नहीं रहेगी। सीता के साथ रहने पर जो वस्तुएँ मुझे अति सुन्दर लगती थीं, वे ही आज उसक बिना निष्प्राण जान पड़ती हैं। पुष्प-समूह से आच्छादित भूमि ऐसी सुखदायिनी हो गयी है, मानो शयन करने के लिए सुखद बिछोने बिछा दिए गए हों।”

भगवान् श्रीराम को विलाप करते हुए देखकर लक्ष्मणने भगवान् से कहा—“पुरुषोत्तम ! आप अपने को संभालिए। आप जैसे सर्वसमर्थ की वृद्धि उत्साह-शून्य नहीं होनी चाहिए। स्वजन के अवश्यम्भावी वियोग का दुःख सभी को सहना ही पड़ता है। यह स्मरण करके अपने प्रियजन की आसक्ति त्याग दीजिए क्योंकि जल में भीगी हुई वस्ती भी अधिक तेल में डुबो देने पर जलने लगती है। यदि रावण पाताल में या उससे भी अधिक दूर चला जाय, तो भी अब वह किसी तरह जीवित नहीं रह सकता। पहले उस पापी राक्षस का पता लगाना चाहिए। या तो वह सीता को लौटा देगा या वह प्राणों से हाथ धो बैठेगा। उत्साह और उद्योग का आश्रय लेकर ही जनकनन्दिनी को प्राप्त कर सकते हैं। उत्साह से ही काम करने पर सफलता मिलती है।”

लक्ष्मण के समझाने पर दुःख से संतप्त भगवान् श्रीराम ने शोक और मोह का परित्याग करके धैर्य धारण किया। वास्तव में भगवान् श्रीराम की विलाप-लीला से भी मानव-मात्र को शिक्षा मिलती है। वे जो कुछ भी करते हैं, धर्म रूप ही है। आदर्श पत्नी के वियोग में दुःखित होना धर्मका आदर्श ही है। यह सुन्दर चर्चा वाल्मीकि रामायण के आधार पर की गयी है। श्रीरामको वाल्मीकिने आदर्श मानवोत्तम माना है। नर में नारायण को उन्होंने देखा है। वाल्मीकि-रामायण

(६५)

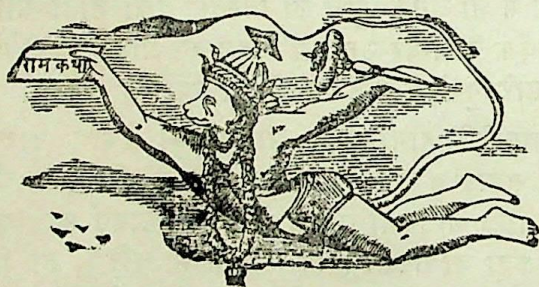
का अनुसरण अन्य भाषाओंके महाकवियों ने भी किया है। निश्चय ही संसार में रहते हुए भी संसार-सागर से पार उतरने के लिए सर्वमान्यादर्श भगवान् श्रीराम का चरित्रादर्श, भावादार्श और उनका भव्य विचार देखना चाहिए और उनका अनुकरण अपने जीवन में अवश्य ही करना चाहिए।

आदिकवि महर्षि वाल्मीकिने सम्पूर्ण अपनी रामायण में श्रीराम के भिन्न-भिन्न आदर्शगुणों का वर्णन करते हुए उन्हें सर्वमान्यादर्श कहा है। यद्यपि यह शीर्षक उनके सारे गुणों से सम्बन्ध रखता है, लेकिन उनके गुणों को सारी पुस्तक में भिन्न-भिन्न शीर्षकों के अन्दर बताया गया है। अतः अन्य शीर्षकों में भी उनके गुणों का विस्तार देखा जाना चाहिए। इस शीर्षक के अन्दर उनके प्रेमादर्श की अधिक चर्चा की गई है। सारे गुणों में प्रेम का गुण ही सर्वश्रेष्ठ गुण है।

वाल्मीकि रामायण में श्रीराम को देवर्षि नारदजीने सर्वगुण सम्पन्न तथा सर्वमान्यादर्श कहा है और ऐसा ही पूर्ण रूप से सिद्ध भी किया गया है। सर्वमान्यादर्श का यह भी प्रमाण कहा जा सकता है कि श्रीराम के चरित्र का चित्रण देश की सभी भाषाओं के अतिरिक्त अनेक विदेशी भाषाओं में भी अवश्य किया गया है। लंदन, अमेरिका, आदि में भी श्रीराम के चरित्र की कथा सुनी और कही जाती है। उनके सर्वमान्यादर्श का कारण उनका अनुपम महान आदर्श चरित्र ही है। उनके चरित्र की अधिक चर्चा "चरित्र" शीर्षक में ही की गई है।

सचमुच में भगवान् श्रीराम का सर्वमान्यादर्श चरित्र का ही प्रचार-प्रसार होना चाहिए। इसी से जगमंगल तथा

जनमंगल हो सकता है । महर्षि वाल्मीकिने मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम को सर्वगुण-सम्पन्न पुरुष के रूप में चित्रित किया है । एक मनुष्य में जो भी गुण हो सकते हैं, उन सभी गुणों का समन्वय श्री राम के चरित्र में किया गया है जिससे उनमें सभी विद्वान् स्वयं ही भगवान् का अध्यारोप कर लेते हैं ।



रघुपति राघव राजाराम, पतित पावन सीताराम ।
सीताराम सीताराम सीताराम जय सीताराम ॥

श्रीराम और रावण के चरित्र में अन्तर



मानव का आदर्श धर्म और चरित्र श्रीराम के रूप में मूर्त ही है अर्थात् आदर्श चरित्र का पात्र राम और दुश्चरित्र का पात्र रावण है। राम का लक्ष्य संसार में सबका कल्याण करना, धर्मपथ दिखलाना तथा परम शांति की स्थापना करना है, लेकिन रावण का काम संसार को रूलाना है अर्थात् अत्याचार एवं अशांति की वृद्धि करना है। राम सकल सुखधाम तथा अखिल लोकदायक विश्राम हैं और इसीके अनुरूप उनके चरित्र भी हैं। रावण का लक्ष्य है—बल, बुद्धि, वैभव के द्वारा संसार को संतस्त करना तथा अपनी अहं-भावना द्वारा अपना ही अहित करना।

राम के जीवन में चरित्र की साधना मुख्य है। उनके चरित्र में किसी भी प्रकार का दोष नहीं है। जीवन में साधना का अभ्यास मुख्य है। भले ही साधनाएँ अनेक प्रकार की हैं, लेकिन सभी आत्मकल्याण करने के लिए ही की जाती हैं। सत्य एक ही है जिसे सभी महापुरुषों ने स्वीकार किया है और सबों का लक्ष्य उस एक सत्य की ओर जीवमात्र को मोड़ने के लिए है। इसी सत्य की पहचान कराने के लिए सारे धर्म ग्रन्थ लिखे गये हैं और ऋषियों, महर्षियों एवं संतों ने इसी का प्रकाश जीवमात्र में होने के लिए सत्संग, प्रवचन आदि

(६८)

की व्यवस्था की है। श्रीमद्भागवत में इसी एक सत्य से मंगलाचरण किया गया है—“सत्यं धीमहि ।” सारे महापुरुषों ने एक ही सत्य को देखा है और अपनी भिन्न-भिन्न भाषा में उसी का उपदेश किया है। श्रीराम उसी सत्य के प्रतीक हैं और रावण असत्य का प्रतीक है। उसी एक सत्य को चर्चा भगवान् के रूप में की जाती है। अवतारी महापुरुष उसी सत्य का दिग्दर्शन कराने हेतु जगत् में आते हैं जिनकी क्रिया लीला कही जाती है। लीला और क्रिया में अन्तर है। भगवान् और महापुरुष कामनारहित, स्वार्थ रहित होते हैं और उनकी प्रत्येक लीला मानवमात्र को शिक्षा देने के लिए, अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाने के लिए होती है। लेकिन मनुष्य की क्रिया सामान्यतः स्वार्थपूर्ण तथा कामनापूर्ण होती है। लीला और क्रिया का विशद विवेचन इस लेखक की पुस्तक “भगवत्तत्त्व मीमांसा” में देखा जाना चाहिए।

धर्मग्रन्थों में जो बातें लिखी गई हैं, उनके अनुसार हमारा जीवन होना चाहिए, शुद्ध आचार एवं व्यवहार होना चाहिए। धर्मग्रन्थ जीवन की साधनाओं का पथ प्रदर्शन करते हैं। वे गुरु के रूप में सदा सम्यक् मार्ग दर्शन करते हैं। महापुरुषों का जीवन और चरित्र मार्ग दर्शन के रूप में होता है। भगवान् राम का चरित्र साधकों के लिए मार्ग दर्शन ही है। श्रीरामचरितमानस साधन ग्रन्थ ही है। तुलसीदासजी का जीवन और चरित्र साधना के रूप में ही है। भक्ति कैसे करनी चाहिए, तुलसीदासजी का जीवन-चरित्र दर्पण के रूप में है। अपनी गलतियों तथा अपने विकारों को खुले दिल से भगवान् के सामने व्यक्त करना चाहिए। सच्चे अर्थ में भगवान् ही माता, पिता, बन्धु, सखा और सर्वस्व हैं। सभी

महापुरुष कहते हैं कि सत्य के प्रतीक भगवान् श्रीराम को सदा अपने हृदय में तथा सभी जड़-चेतन में देखने का अभ्यास करना चाहिए। अभ्यास ही साधना है और जीवन में सबसे अधिक महत्वपूर्ण है।

रावण अविवेकी का प्रतीक है। उसने घोर तपस्या करके महान् शक्ति प्राप्त की और उसका दुरुपयोग किया। केवल देवता ही नहीं, बल्कि असुरगण भी उसके भय से भयभीत रहते हैं। सुर, असुर किसी को भी न रात्रि में सुख की नींद आती और दिवस काल में भोजन करने में न रुचि तथा आनन्द ही मिलता, ऐसा रावण का दुराचार, अत्याचार ही कहा जा सकता है। रावण किसी को बनने की नहीं कोशिश करनी चाहिए। उसका जीवन निषेध कर्मों से पूर्ण दिखाया जाता है।

भगवान् राम सर्वशक्तिमान होते हुए भी शांति के उपासक हैं। उनको व्यर्थ का रक्तपात अभीष्ट नहीं है। वे नम्रता की अद्भुत आदर्श मूर्ति हैं। वे अपनी प्रचण्ड बाहुशक्ति ले शिवधनुष तोड़कर मर्यादापूर्वक वैदेही की प्राप्ति करते हैं। परशुरामजी से वार्तालाप करते हुए वे कितने अगाध नम्र दीखते हैं, रामचरितमानस का अनुशीलन करने वाले प्रत्येक पाठक जानते हैं। परशुरामजी उन्हें क्षमा-मन्दिर कहते हैं।

श्रीराम का व्रत ही संसार को अभय प्रदान करने का है। अवतार लेने की घोषणा करते हुए यह सुन्दर व्रत ही लेने को ठानते हैं :—

“जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेखा ।

तुम्हहि लागि धरिहुँ नर बेसा ॥

हरिहउँ सकल भूमि गरुआई ।

निर्भय होहु देव समुदाई ॥”

अवतार लेने के पश्चात् वे जहाँ-जहाँ जाते हैं, वहाँ के लोगों को अभय प्रदान करके निश्चिन्त बना देते हैं। यद्यपि वे विश्वहित के लिए राक्षसवध की प्रतिज्ञा करते हैं, फिर भी उनके विशाल हृदय में रावण को भी अभय कर देने की इच्छा है, इसीलिए वे स्पष्ट रूप से घोषणा करते हैं :—

“कोटि विप्र वध लागहिं जाहू ।

आए सरन तजउँ नहिं ताहू ॥

जो नर होइ चराचर द्रोही ।

आवै समय सरन तकि मोही ॥

तजि मद मोह कपट छल नाना ।

करउँ सद्य तेहि साधु समाना ॥”

उन्हें रावण-वध अभीष्ट नहीं है। वे तो उसका रावणत्व नाश करना चाहते हैं और इसीलिए उसे समझाने के लिए हनुमान तथा अंगद को लंका भेजते हैं।

राम को कृपासागर कहना भी राम की निन्दा जान पड़ती है। सागर का ओर-छोर होता है, सीमा होती है, किन्तु भगवान् राम की दया, कृपा की कोई सीमा नहीं है। उनके हृदय में कृपा का असीम महासागर सदा ही लहराता रहता है। इस प्रसंग में यह कहना उचित जान पड़ता है कि सांसारिक दया, कृपा तो एक सात्विक भाव है, मायिक वस्तु है। इसे ईश्वरीय कृपा की छाया या आभासमात्र ही कह सकते हैं। यदि सम्पूर्ण संसार की सारी दया एकत्र कर दी

जाय तो भी वह भगवत्कृपा, भगवद्दया के चिन्मय और असीम समुद्र की एक बूँद के तुल्य भी नहीं कही जा सकती है। फिर भी हम भगवान् राम को कृपासागर ही कहते हैं। इसमें हम भक्तों की श्रद्धाभक्ति भावना की कितनी ऊँचाई रहती है, इसे सामान्य सांसारिक मनुष्य क्या जान सकता है? उनकी असीम, अनन्त चिन्मयी कृपासुधा का अनुभव कोई भक्तिभाव वाला भक्तमनुष्य ही कर सकता है। भक्ति का मार्ग सर्वोच्च मार्ग है। लेकिन ज्ञान इसका विरोधी नहीं है। सचमुच में कर्म, योग आदि सारे मार्ग भक्ति-पथ को प्रशस्त करने वाले हैं। संकीर्ण और अल्प ज्ञान रहने के कारण ही अन्य साधन विरोध रूप में वक्त्याये जाते हैं जो अनुचित हैं।

भगवान् राम का यह स्वभाव है कि वे अपने प्रति अपराध पर कभी भी क्रोध नहीं होते। वे भृगु की लात सहते हैं, नारदका शाप सहते हैं और परशुराम का दुर्वचन भी सहते हैं। लेकिन जो उनके भक्त का अपराध करते हैं, उन्हें वे क्षमा नहीं करते हैं। देवराज इन्द्र को समझाते हुए देवगुरु वृहस्पति कहते हैं :—

“सुनु सुरेस रघुनाथ सुभाउ ।

निज अपराध रिसाहिं न काउ ॥

जो अपराध भगत कर करई ।

रामरोष - पावक सो जरई ॥”

रावण विषयवासनाओं की पूर्ति में ही अपना अमूल्य समय बर्बाद करता है। वह विलासिता का मूर्तिमान नग्न स्वरूप है। कामुकता के रोग से भयंकर रूप में वह ग्रसित

(१०२)

है। विलखती हुई सहस्रों देव कन्याओं का अपहरण कर उन्हें अपनी कामक्रीड़ा का साधन बनाता। फिर भी उसकी कामाग्नि शान्त नहीं होती। वह देव, गन्धर्व, यक्ष, किन्नरों की अनेक सुन्दर कन्याओं का बलपूर्वक हरण करता। ध्यान पूर्वक देखा जाए :—

“देव यक्ष गन्धर्व नर, किन्नर नागकुमारि।

जीति वरी निज बाहुबल, बहु सुन्दर वर नारि ॥”

इतने पर भी उसे सन्तोष नहीं होता। विश्व का अधिपति होने पर भी वह अपनी वासनाओं का दास है और उसका जीवन नारकीय है। पतिव्रताशिरोमणि श्रीसीताजी से वह जो प्रस्ताव करता है, वह उसके घोर चारित्रिक पतन का परिचायक है। देखिए :—

“कह रावणु सुनु सुमुखि सयानी।

मंदोदरी आदि सब रानी ॥

तव अनुचरी करउँ पन मारा।

एक बार बिलोकु मम ओरा ॥”

भारतीय सस्कृति में एक विवाह यज्ञमय है। इसका रहस्य विज्ञजन तथा परमतत्त्वज्ञ ही जानते हैं। भगवान् राम विवाह के परम पवित्र उद्देश्य की रक्षा करते हैं। मन, वचन तथा कर्म से वे श्रीसीताजी पर अनुपम प्रेम करते हैं। कठिन स्थिति में भी उनका प्रेम सुदृढ़ रहता है। चरित्र निर्माण तथा विकास में एक पत्नीव्रत प्रेम सहायक है और जीवन में उदात्त भावनाओं को सदा पल्लवित एवं पुष्पित करने में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। श्रीराम की दृढ़ता

(१०३)

का ही फल प्रजा पर पड़ता है और राम राज्य में सारी प्रजा एक पत्नीव्रत का पालन करने लगी। देखिए:—

“एक नारीव्रत रत सब भारी।

ते मन बच क्रम पति हितकारी ॥”

त्रैलोकाधिपति रावण की वहन स्वयं अपना स्वरूप सँवार कर सत्यधर्म के प्रतीक भगवान् रामको वरण करने आती है। उसका नाम सूर्पनखा है। उसका मनमोहक सौन्दर्य आत्मविजयी राम को लेशमात्र भी विचलित न कर सका। उन्हें अपने मन पर पूर्ण नियंत्रण है। उनका धर्ममय चरित्र मानवमात्र को सच्चा प्रकाश देकर आदर्श पथ पर चलने की प्रेरणा देता है। उनकी सारी क्रियाओं और भावनाओं में प्रकाश ही है और मंगलमय प्रेरणादायक है। उनकी क्रियाओं द्वारा धर्म की व्याख्या समझी जा सकती है। स्वप्न में भी उनसे अनुचित क्रिया नहीं होती। इसलिए उनके राज्य में कोई पाप की दृष्टि नहीं रखता।

रामको महर्षि वाल्मीकिने आदर्श मानवोत्तम माना है। उन्होंने नर में नारायण को देखा है। राम जो कुछ भी करते हैं, वह सब धर्म के ही रूप हैं। वे भारतीय लोक-मर्यादा के आदर्श हैं। उनके जीवन में हमारी सामाजिक मर्यादाएँ एवं आदर्श व्यक्त हुए हैं। उनका चरित्र ही शास्त्र है, उनका आचरण ही धर्म है। वे लोक जीवन में समाहित होकर भी उसके ऊपर हैं। वे एक साथ आदर्श और मर्यादा-पालक हैं। वे तप और त्याग की मूर्ति हैं। उनके सारे कर्म उदात्त भावना से पूर्ण हैं। उनका जीवन अपने लिए अर्थात् भोगमय नहीं है। उनके जीवन में लोकहित की प्रधानता है।

(१०४)

आत्म चैतन्य का प्रकाश उनके जीवन से प्रस्फुटित होता है। छोटे के प्रति स्नेह तथा गुरुजनों के प्रति सम्मान एवं भक्ति से उनका हृदय पूर्ण है। बचपन से ही वे शील के समुद्र हैं। प्रशान्त आत्मा और मृदुभाषी हैं। यदि कोई उन्हें कठोर बात भी कह देता तो उसका उत्तर वे नहीं देते। कोई कभी उनका उपकार कर देता तो उसकी याद सदा रखते। कोई सैकड़ों अपराध कर देता तो उन्हें वे भूल जाते। बल एवं पराक्रम में बड़े-चढ़े होने पर भी उन्हें कभी गर्व और अभिमान नहीं होता। वे विद्वान् होते हुए भी बड़े-बूढ़ों की भक्ति करते। कभी कोई झूठी बात उनके मुँह से निकलती ही नहीं। वे दयालु, क्रोध को जीतनेवाले, ब्राह्मणों के पूजक, धर्म के ज्ञाता इन्द्रियों को सदा वश में रखनेवाले और भीतर-बाहर से पवित्र रहते हुए सबके प्रति मंगल भावना रखते। तुलसीदास तो उनके शील का निरन्तर वर्णन करते हुए भी अघाते नहीं। सारी रामायण उनके प्रति श्रद्धा-वाक्यों से भरी पड़ी है। वे दुःख-सुख से परे और स्थितप्रज्ञ हैं—“प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः।”

पारिवारिक जीवन की दृष्टि से देखिए तो श्रीराम एक आदर्श पुत्र, आदर्श भाई और आदर्श पति हैं। माता पिता एवं गुरुजनों के प्रति उनमें असीम सम्मान का भाव है। भाइयों के प्रति तो उनका हृदय प्रेम से इतना द्रवित है कि राज्याभिषेक की बात उन्हें अद्भुत लगती है। राम के जीवन में यही सत्य का प्रकाश है। हरेक मनुष्य को उनके जीवन से सत्य का प्रकाश मिलता है। दुःख के साथ कहना पड़ता है कि कोई-कोई उनके चरित्र से धर्म का सार नहीं समझ पाते हैं।

(२००)

(१०५)

इसके विपरीत रावण का अधर्ममय, प्रापम्य आत्मन है। रावण की तरह जो धर्म की बात नहीं सुनते और प्राणिमात्र को कष्ट देने में ही लगे हैं, उन्हें भी रावण ही कहना उचित है। रावण को अपनी बुद्धिमत्ता पर बड़ा अभिमान है। उसकी दृष्टि में न तो कोई उसके समान बुद्धिमान है और न बलवान है। उसके मुख से निकलता हुआ वाक्य ही कानून है। वह साधु स्वभाववाले अपने छोटे भाई विभीषण पर पद-प्रहार करता है और लंका से बाहर निकाल देता है। उसके दुर्गुणों को कितना गिना जाए? दुर्गुणों के कारण समाज उसे निन्दित करता है और कोई भी व्यक्ति उससे खूश नहीं। उसकी तरह कोई आदमी बनना नहीं चाहता और दूसरी ओर अनन्त गुणों तथा अगाध शीलता के कारण श्रीराम भगवान् कहे जाते हैं। उनकी पूजा और भक्ति की जाती है।

इस प्रकार राम अपने दिव्य चरित्र के कारण नैमस्य एवं व्रज हैं लेकिन रावण अपने अत्याचारों एवं निषेध कर्मों के कारण आज भी निन्दित है। श्रीराम के चरित्र से यह स्पष्ट होता है कि मानवता से ही दानवता का परभाव हो सकता है। श्रीरामचरित्र के माध्यम से "मानवता" एवं रावण के चरित्र के माध्यम से "दानवता" के स्वरूपों का प्रतिपादन हुआ है। "मानवता" नाम मयाविका है और मयादाका जन्म "विनय" है। "दानवता" नाम उद्ध्वेखलताका है और उसका जन्म "अहंकार" है। मानवता, सुख, शान्ति, उन्नति एवं सेवाभाव आदि की जननी है। राम में विद्यमान "रामत्व" विनय है और रावण में विद्यमान "रावणत्व"

(१०६)

आर्षग्रन्थों तथा धर्मशास्त्रों के आधार पर श्रीराम चार प्रकार के हैं :—

(१) एक राम ऐतिहासिक राम हैं जिन्होंने अपना परिचय “आत्मानं मानुषं मन्ये रामं दशरथात्मजम्” के रूप में देवताओं को दिया। (२) दूसरा राम अध्यात्म में आत्मा है। उस आत्मा को “राम” माना है जो विवेक, सुमति, दया, मैत्री और मुदिता आदि आत्मगुणों से परिपूर्ण है। इसके लिए ही ‘शान्तिसीतासमायुक्त आत्मा रामो विराजते’ कहा गया है।

(३) तीसरा राम मानवता के सारे गुणों से परिपूर्ण परमादर्श महामानव है जिस रूप में महर्षि वाल्मीकि ने वर्णन किया है।

(४) चौथा राम पूर्णब्रह्म परमात्मा है जिसकी भक्ति करने के लिए गोस्वामी तुलसीदासजी ने संदेश दिया है। रामावतार में हमें मानव-स्वभाव की प्रबलता और धर्म इन दोनों का विशद परिचय मिलता है।

श्रीराम और रावण के चरित्र में तुलना कर निष्कर्ष रूप में यही बताया गया है कि श्रीराम का आचरण ही अनुकरणीय है और रावण तो दुराचारी की मूर्ति ही है अतः उसके दुराचार को अपनाना कौन पसंद कर सकता है? इसीलिए “योगवासिष्ठ” में कहा गया है :—

“रामवद् व्यवहर्तव्यं न रावणविलासवत्”

“शुक्रनीतिसार” में कहा गया है कि इस भूमंडल पर राम के समान परमादर्श न कोई हुआ है और न कोई हो सकता है।

(१०७)

आज केवल भारतीय जीवन ही नहीं सम्पूर्ण विश्व का जीवन मानसिक तथा आध्यात्मिक धरातल पर विविध दोषों से ग्रस्त हो रहा है। श्रीराम के चरित्र को भूलने का ही यह भीषण परिणाम कहा जा सकता है। आध्यात्मिक तत्त्व के ज्ञाता ऋषिजन कहते हैं कि जिसके अन्तःकरण में अहंकार का साम्राज्य है, वही सच्चा रावण है। सारे धर्म और साधन अहंकार मिटाने के लिए ही हैं। मैं इस प्रसंग में यह कहना उचित समझता हूँ कि अहंकार मिटाने के लिए रामकृष्ण परमहंस मेहतरों के महल्ले में जाकर झाड़ू लगाते। कालीबाड़ी के भिखारियों की झूठी पत्तलें सिर पर उठाकर गंगा में फेंक आते। इस प्रकार राम का चरित्र दैवी गुणों का परिचायक है और रावण का चरित्र आसुरी गुणों का बोधक है। अतः राम का गुण अपनाना चाहिए।



दशरथनन्दन श्रीराम भजो रे ।

नन्दनन्दन श्रीश्याम जपो रे ॥



भिन्न-भिन्न रामायण में राम-राज्य का वर्णन भिन्न-भिन्न रूप में है, लेकिन इतना अवश्य है कि जहां राम-राज्य का वर्णन है, वहां आदर्श राम-राज्य का वर्णन देखने को मिलता है। राम को आदर्श राजा के रूप में सिद्ध किया जाता है और रामराज्य के आनन्दमय तथा खुशहाल प्रजा का उल्लेख रहता है। यदि राम की तरह कोई भी धर्मात्मा राजा हो तो प्रजा भी निश्चय ही धर्मात्मा और सदाचारपूर्ण होते हुए देश में परम शान्ति की स्थापना कर सकती है। कहा भी जाता है कि—

“यथा राजा तथा प्रजा”

धर्मात्मा राजा के राज्य में धर्म का प्रत्यक्ष रूप देखा जा सकता है और सुख-शांति का साम्राज्य भी कोई भी देख सकता है, इसी आलोक में रामराज्य का वर्णन करना चाहता हूँ, सुनिए।

जब केवल एक दिन श्रीराम के बनवास के चौदह वर्ष पूर्ण होने को रह गया तब धर्मरूप भरतजी को बड़ी व्याकुलता हुई। भगवद्भक्ति के जगत् में प्रवेश करने के लिए धर्म का आचरण अपनाना अत्यावश्यक है। धर्म के पालन में कष्ट सहना पड़ता है। भरत के जीवन में कितना कष्ट सहना पड़ा, इसका विस्तार उल्लेख यहाँ नहीं करना चाहता हूँ। इसे भिन्न-भिन्न रामायण तथा रामचरितमानस में देखा जा सकता है।

जो धर्म का पालन कर सकता है, वही भगवान् का भक्त भी हो सकता है। भरत के समान भगवद्भक्त होना भी

कठिन है। भगवान् को “भक्त-वांछा—कल्पतरु” कहा जाता है। उनकी सारी लीला भक्तों के लिए होती है। श्रीमद्-भागवत में भगवान् ने स्पष्ट ही कहा है कि मैं भक्त के लिए ही सब कुछ करता हूँ। मैं तो अकर्त्ता, अभोक्ता हूँ, केवल भक्तों के लिए ही कर्त्ता और भोक्ता बनता हूँ।” इस प्रकार कहना यह चाहता हूँ कि वेदान्तियों के लिए भगवान् अकर्त्ता भी हैं और भक्तों के लिए कर्त्ता भी हैं। भगवान् ही ऐसा हैं जिनके लिए सब तरह का विशेषण दिया जा सकता है, यह स्वामी विवेकानन्दजी का भी कथन है। भरतजी की व्याकुलता जानकर भगवान् श्रीरामने हनुमानजीको आगे ही भरतजी को अपने आने का समाचार सुनाने के लिए भेज दिया जब हनुमानजीने भक्तशिरोमणि भरतको भगवान् श्रीराम के आने का शुभ समाचार दिया तो सम्पूर्ण अयोध्या में आनन्द का समुद्र मानो उमड़ पड़ा। भगवान् श्रीराम द्वारा चित्रकूट में दी हुई खड़ाऊँ भरतजी अपने सिर पर रखकर भगवान् का स्वागत करने के लिए ब्राह्मणों मंत्रियों तथा अयोध्या के लोगों के साथ चले। उस समय सबों के हृदय में आनन्द की लहरें किम रूप में लहरा रही थीं, यह शब्दों में प्रकट करने योग्य नहीं है। उस समय की मंगलमयी स्थिति का अंदाज और अनुमान भक्तगण अपने हृदय में ही करके आनन्दित हो सकते हैं। भगवान् श्रीराम श्रीसीताजी, लक्ष्मणजी और भक्त वन्दरों के साथ पुष्पक विमान से उतरे। सभी अयोध्यावासी उन्हें देखकर आनन्द में डूब गए।

शुभ मुहूर्त में प्रजावत्सल श्रीराम राजसिंहासन पर बैठे। उनके राज्य का वर्णन अत्यन्त सुखदायक है। जो भी उनके राज्य का वर्णन करता है तथा सुनता है, उसके सारे शोक और मोह मिट जाते हैं। उसका हृदय अत्यन्त स्वच्छ बन

जाता है। धर्मात्मा राजा के धर्म का प्रताप अद्भुत होता है। धर्मात्मा श्रीराम के राज्य में किसी व्यक्ति को कोई कष्ट नहीं होता है। कोई भी किसी प्रकार का पाप नहीं करता है। लड़ाई-झगड़े तो होते ही नहीं हैं। किसी के मन में भी कभी कोई अशुभ बात नहीं आती है। सब लोग सयमी, त्यागी परोपकारी, दयालु और धर्मरत हैं। सबके घर धन-धान्य से भरे-पूरे हैं। किसी को न कोई रोग होता है, न चिन्ता होती है। रामराज्य का गुणगान आज भी पवित्र भाव से किया जाता है। सभी भक्त-महापुरुष कहते हैं कि रामराज्य का स्मरण करने से ही हृदय परिवर्तित हो जाता है और शुभ विचारों के प्रवाह मानस में प्रवाहित होने लगते हैं। भक्तशिरोमणि श्रीतुलसीदासजी उमंग के प्रवाह में कहते हैं कि रामराज्य के सुख, सम्पदा का वर्णन शेष और शारदा माता भी नहीं कर सकती हैं। देखिए तुलसीदासजी की वर्णन-शैली :—

“राम राज बैठे त्रैलोका ।
हरषित भए गए सब सोका ।
वयरु न कर काहू सन कोई ।
राम प्रताप विषमता खोई ॥
सब नर करहि परस्पर प्रीति ।
चलहि स्वधर्म निरत श्रुतिनीति ॥
अल्पमृत्यु नहि कबनिउ पीरा ।
सब सुन्दर सब बिरुज सरीरा ॥
नहि दरिद्र कोउ दुखी न दीना ।
नहि कोउ अवुध न लच्छन हीना ॥

(१११)

दैहिक दैविक भौतिक तापा ।
 राम राज महि काहुहि व्यापा ॥
 सब भुनग्य पंडित सब ग्यानी ।
 सब कृतग्य नहि कष्ट सयानी ॥
 राम राज बर सुख संपदा ।
 वरति न मकई फनीस सारदा ॥”

अब भगवान् श्रीराम की अंतिम अवतार-लीला का रहस्य भी प्रकट करना चाहता हूँ । इसे आगे एक नया शीर्षक “भगवान् श्रीराम की अंतिम लीला” देकर वर्णन करना चाहता हूँ । उनके अवतार का रहस्य ठीक-ठीक कौन-जान सकता है ? किन्तु उनकी कृपा का आश्रय लेकर ही कुछ कहा जा सकता है । उनकी अंतिम लीला में मर्यादा का पालन देखा जाता है जिसे आप अब आगे देख सकते हैं ।



राम राघव राम राघव राम राघव रक्षमाम् ।
 कृष्ण केशव कृष्ण केशव कृष्ण केशव पाहिमाम् ॥

भगवान् श्रीराम की अंतिम लीला



सभी रामायणों में भगवान् श्रीराम की अंतिम लीला का वर्णन नहीं मिलता है। कुछ रामायणों में उसका वर्णन मिलता है तो भिन्न-भिन्न रूप में। हर रामायण में वर्णन अपने ढंग का है। सभी रामायण में एकही तरह की बात हो, यह संभव भी नहीं हो सकता है। जैसे उदाहरण के लिए किसी-किसी रामायण में 'सीता-परित्याग' का वर्णन भगवान् श्रीराम की अन्तिम लीला में देखने को मिलता है और किसी किसी में इस रूप में नहीं मिलता है। 'आनन्दरामायण' के आधार पर भगवान् श्रीराम की अंतिम लीला का वर्णन करना चाहूँगा।

भगवान् श्री रामने लगभग ग्यारह हजार वर्ष राज्य किया। अन्त में वह समय आया जब उन्हें अपने अवतार-रूप को छिपाकर अपने शाश्वत दिव्यधाम साकेत को जाना था। रामोपासकों की धारणा में "साकेत" वह सर्वोच्च लोक है जहाँ भगवान् श्रीराम सदा निवास करते हैं।

अच्छे-बुरे लोग, संत, असंत स्वभाव वाले लोग सब जगह रहते हैं। इस विश्व की सृष्टि ही गुण, दोष दोनों के द्वारा होती है। रामानुजाचार्य भी कहते हैं कि "केवल गुण ही गुण एक परमेश्वर में ही रहते हैं। जीव तथा जगत् दोनों में गुण-दोष अवश्य रहते हैं, इसीलिए जगत् में जीव के लिए परमेश्वर की उपासना अत्यन्त आवश्यक है।"

नित्यमुक्त जीव शुकदेव, नारद आदि भी परमेश्वर की उपासना करते हैं। कुछ महापुरुषों का कहना है कि नारद,

(११३)

शुकदेव आदि लोक-कल्याण के लिए ही उपासना का मार्ग प्रशस्त और प्रसारित करते हैं। उनकी गिनती अवतार में ही होती है। अयोध्या जैसे परम पुनीत धाममें एक दुर्जन स्वभाव वा धोबी भी रहता था। उसकी स्त्री किसी काम से एक रात में अपने सम्बन्धी के घर लाचारी से रह गयी थी। वह सदाचारणी और परम पवित्रा थी। लेकिन लोक में यह देखा जाता है कि असंत, संत को भी असंत ही समझते हैं और दुष्ट लोग को समस्त संसार दुर्गुणों से ही पूर्ण दीखता है। जिसकी जैसी दृष्टि होती है वैसे ही उसे सृष्टि दीखती है। दृष्टि का मतलब यहाँ विचार और संस्कार है। जिसके विचार और संस्कार दोषमय हैं, उसे ही दूसरे में दोष दीखते हैं। दोष तो अपना दीखना चाहिए लेकिन पुण्यात्मा को ही अपना दोष दीखता है। दुर्जन को अपना दोष और अवगुण नहीं दीखता है, यह ऋषियों की अनुभूति है। वह धोबी स्वयं दुर्जन था और इसीलिए वह अपनी स्त्री को दुराचारणी समझ रहा था। वह क्रोध में आकर अपनी पत्नी को डाँट रहा था और कह रहा था कि “श्रीरामने जैसे रावण के यहाँ रही सीता को अपने घर रख लिया, वैसे मैं तुझे अपने घर नहीं रखूँगा। तू मेरे घर से निकल जा।” यह बात गुप्तचरोंने भगवान् श्रीराम से बतायी। श्री सीताजी निर्दोष थीं और त्यागने योग्य नहीं थीं, लेकिन धर्मात्मा राजा का कर्तव्य प्रजा को भी धर्म मार्ग पर स्थिर रखना है। प्रजा में सदाचार और धर्मनिष्ठा कायम रहे, इसके लिए राजा को सतत चेष्टा करनी चाहिए। लोकोपवाद को आश्रय देना अधर्म ही कहा जाता है। सीताजी के विषय में लोकोपवाद बढ़ना धर्म के विरुद्ध था।

(११४)

लोकोपवाद का मतलब लोकनिन्दा है। कई रामायणों में भगवान श्रीरामने स्पष्ट ही कहा है कि “प्राण दे देना अच्छा है लेकिन लोक निन्दा सहना अच्छा नहीं है।” लोकनिन्दा दूर करना धर्मानुकूल कार्य है। महर्षि वाल्मीकि, रामकृष्ण परमहंस तथा स्वामी विवेकानन्दजीने कहा है कि अवतारों में राम जैसा धर्म का पालन करने वाला कोई अन्य अवतार नहीं है। श्रीरामने जो कुछ भी किया है वह आदर्श धर्म का ही रूप है। प्रजा धर्म में संदेह करके धर्म से च्युत न हो, इसी धार्मिक विचार से धर्मज्ञ राजारामने अपनी प्यारी पत्नी सीता का परित्याग किया। धर्म का पालन करने में त्याग की अनिवार्यता है। सीता के त्याग में श्रीराम की धर्म-निष्ठता निखरती है। इससे धर्म की मर्यादा प्रकाशित होती है। भगवान के अवतार का मुख्य प्रयोजन धर्म की स्थापना करना ही कहा जाता है।

सीताजी को महर्षि वाल्मीकिने देखा। वे उन्हें अपने आश्रम में ले गए। सीताजी उनके आश्रम में ऋषि की पुत्री की भाँति रहने लगीं। वहीं लव और कुश दो जुड़वे पुत्र हुए। वे दोनों बड़े ही वीर निकले। श्रीरामने जब अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ किया तो लव-कुशने अश्वमेध का घोड़ा पकड़ लिया। घोड़े की रक्षा शत्रुधनजी तथा बहुत-से सैनिक कर रहे थे। युद्ध में लव कुशने शत्रुधनजी तथा सैनिकों को हरा दिया और हनुमानजी तथा सुग्रीवजी को बांधकर अपनी माता के पास ले आए। दया की परमादर्श मूर्ति सीताजी ने हनुमान तथा सुग्रीव को बन्धन से छुड़ा दिया। महर्षि वाल्मीकिने लव-कुश को सम्पूर्ण रामायण कण्ठस्थ करा दी थी और वे उसे बड़े ही मधुर स्वर में गाते थे। एक दिन महर्षि की आज्ञा लेकर ही

वे दोनों भाई अयोध्या जाकर पूर्ण मस्ती के साथ रामायण मीठे स्वर में गा रहे थे। श्रीरामने उन्हें बुलवाया और सबके साथ बैठकर उनसे रामायण प्रसन्न मन से सुनी। सच्ची बात छिपती नहीं है। वे दोनों श्रीरामके ही पुत्र हैं, यह बात सबकी समझ में आ गई।

श्रीरामने सीताजी को बुलवाकर सबके सामने अपनी पवित्रता के लिए शपथ लेने को कहा। सीताजीने सबके सामने कहा—“यदि मैं सच्ची प्रतिव्रता होऊँ तो पृथ्वी माता मुझे स्थान दे।” उनके यह कहते ही पृथ्वी फट गयी। उसमें से सोने का सिंहासन लिए पृथ्वी देवी प्रकट हुई और सीताजी को सिंहासन पर बैठाकर पाताल चली गई।

इस घटना के कुछ दिन बाद एक दिन स्वयं काल देवता मुनि के वेश में भगवान् श्रीराम के पास यह कहने आए कि भगवान् को अब साकेत जाने का समय हो गया है। भगवान् श्रीरामने काल से एकान्त में बात करने के लिए लक्ष्मणजी को पहरें पर खड़ा कर दिया और यह भी कह दिया कि ‘इस समय मेरे पास कोई भी आवेगा तो तुझे मैं प्राणदण्ड दूँगा।’ उन्नीसवीं दुर्वासा मुनि पहुँचे। उन्होंने लक्ष्मणजी को श्रीराम के पास तुरंत जाकर अपने आने की सूचना देने के लिए कहा।

‘दुर्वासाजी बड़े क्रोधी हैं, उनकी बात न मानने से वे शाप दे देंगे’ ऐसा सोचकर लक्ष्मणने भगवान् श्रीराम के पास जाकर दुर्वासाजी के आने की सूचना दी। भगवान् श्रीराम की बात कभी झूठी नहीं होती। ‘अपने स्वजन को त्याग देना भी प्राणदण्ड ही है’ ऐसा सोचकर श्रीरामने लक्ष्मण को त्याग दिया। लक्ष्मणने अब प्राण त्यागना ही उचित समझा। अतः उन्होंने सरयूजी के किनारे ही प्राण त्याग

दिया और भगवान् के नित्यधाम में पहुँच गए ।

भगवान् रामने अब घोषणा कर दी कि वे अपने नित्य धाम जा रहे हैं । यहाँ का समय समाप्त हो रहा है । जो उनके साथ साकेत जाना चाहते हैं, वे सरयूजी में स्नान कर उनके पास चले आवें । अयोध्या के सभी स्त्री पुरुष, यहाँ तक कि वहाँ के सभी पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े सरयूजी में स्नान कर श्रीराम के पास पहुँच गए । सब विमान पर बैठे और श्रीराम के साथ साकेतधाम पहुँच गए । यही भगवान् की अन्तिम अवतार-लीला है जिसका वर्णन आनन्द रामायण में है ।

भगवान् की लीला अचिन्त्य, अगाध और अगम्य है । इसके रहस्य को ठीक-ठीक कोई नहीं जान सकता है । श्रीअखण्डानन्द सरस्वतीजीने “भागवत-दर्शन” पुस्तक में लिखा है कि “भगवान् की लीला केवल भगवान् ही जानते हैं । कोई अन्य महापुरुष भी उनकी लीला के रहस्य का नहीं जान सकते हैं । श्रीशुकदेव, सनक-सनन्दन जैसे महापुरुषोंने भगवान् की लीला का “श्रीमद्भागवत” में अनन्त और अगम्य कहा है । सारा ब्रह्मांड प्रभु का ही है और सम्पूर्ण ब्रह्मांड में जो कुछ भी हो रहा है, सब भगवान् की ही लीला है । अतः ब्रह्मांड भर में अनवरत रूपसे भगवान् की लीला ही चल रही है । उनकी लीला समाप्त होने की वस्तु नहीं है । हाँ, अवतारवाली लीला एक योजना के अनुसार चलती है । वह योजना पूरी होने पर अवतार भी अदृश्य होता है । इस प्रकार अवतार भगवान् श्रीराम की अन्तिम अवतारी लीला का वर्णन किया गया । इस लीला में भगवान् की अपनी इच्छा होती है । इसीलिए स्वामी श्रीवल्लभाचार्यने

“लीलानाम विलासेच्छा” कहा है। श्रीवल्लभाचार्य के अनुसार लीला भगवान् की मौज है और आनन्द के लिए ही होती है। इसके उद्देश्य की खोज करना निरर्थक है। हाँ, लीला पढ़ने और सुनने से अन्तःकरण पवित्र होता है और भगवत्प्रेम का विकास होता है।

“अगस्त संहिता” में अगस्तजीने ठीक ही कहा है कि भगवान् के विषय में विचार करने वाले बड़े ही सौभाग्यशाली तथा पुण्यात्मा हैं। उनकी कृपा से ही कोई उनके विषय में कुछ विचार कर पाता है।

भगवान् श्रीराम की जय।



जिन तोको तन दीन्हो, ताको न भजन कीन्हो।
जनम सिरानो जात, लोहे-कैसो ताव रे!!

❀ राम भक्ति ❀



रामभक्ति की चर्चा भिन्न-भिन्न संतोंने अपने-अपने ढंग से की है। राम की चर्चा इस पुस्तक में भगवान् के रूप में की गई है, अतः 'रामभक्ति' का सामान्य अर्थ भगवद्भक्ति है। राम का भजन ही रामभक्ति है। भक्ति में ज्ञान तथा कर्म का कोई स्थान है या नहीं, इस संबन्ध में संतों, विद्वानों तथा आचार्यों में एक मत नहीं है। कुछ विद्वान् भक्तों का कहना है कि भक्ति के लिए ज्ञान और कर्म दोनों की आवश्यकता है। श्रीमद्भगवद्गीता में कर्म, ज्ञान और भक्ति तीनों में समन्वय है। श्रीमद्भागवत कहता है कि जैसे भोजन करने से प्रत्येक ग्रास में पुष्टि, तुष्टि और क्षुधा की निवृत्ति होती है, वैसे ही भजन से भक्ति, ज्ञान और वैराग्य तीनों की वृद्धि होती है। तीनों का वास्तविक आधार भजन ही है। श्रीमद्भागवत के माहात्म्य में यह स्पष्ट दिखाया गया है कि ज्ञान और वैराग्य, भक्ति के पुत्र हैं। भक्ति के पुत्र कहने का तात्पर्य यही है कि ज्ञान, वैराग्य भक्ति से ही उत्पन्न होते हैं, अतः ज्ञान और वैराग्य भक्ति के अंग नहीं हैं, बल्कि ये भक्ति के फल हैं। भक्ति के अधिकारी सभी हैं। गीता १।३० में भगवान् ने स्वयं कहा है :—

“अग्निं चेतुर्दुराचरो भजते मामनन्यभाक् ।

साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्यवसितोहि सः ॥”

जो नीच है, पतित है, पापी है, वह भी भगवान् की

(११६)

शरण जा सकता है। भक्ति में भगवान् भक्त के दोष को नहीं देखते हैं जैसे भगवान् राम सुग्रीव के दोष को नहीं देखते हैं।

भक्ति साधना में पाँच भाव मुख्य माने जाते हैं :—

(१) शान्तभाव (२) दास्यभाव (३) सख्यभाव (४) वात्सल्यभाव और (५) माधुर्यभाव। राम भक्ति में ये पाँचो भाव देखे जाते हैं। श्रीशंकरजी शान्तभाव के, श्रीहनुमन्तलालजी दास्यभाव के, सुग्रीव और विभीषण सख्य भाव के, श्रीदशरथजी तथा कौशल्यामाताजी वात्सल्यभाव के और माँ सीताजी माधुर्यभाव के प्रतीक हैं। पाँचों प्रकार के भावों से भक्तलोग भगवान् श्रीराम की भक्ति-उपासना करते हैं किन्तु श्रीरामचरितमानस में दास्य भक्ति मुख्य रूप से देखी जाती है। सभी भावों में दास्यभाव अवश्य ही अन्तर्निहित रहता है और जीव का स्वभाविक भाव दास्य ही प्रधान कहा जा सकता है। भक्तिशास्त्र में अधिकांश विद्वान् भक्तों ने माधुर्यभाव को ही भक्ति का सर्वोच्च भाव कहा है। माधुर्य-भाव की प्रधान उपासिका गोपियाँ हैं। रासविहार के समय भगवान् के अन्तर्द्धान हा जाने पर गोपियों ने भगवान् को पुनः प्रकट करने के लिए जो गात गाया है, वे श्रीमद्भागवत में 'गोपीगीत' के नाम से प्रसिद्ध हैं। गोपीगीत में गोपियों ने अपने को अनेक बार 'दासी' कहा है जैसे श्रीमद्भागवत १०।३।१६ में देखा जाए। गोपियाँ कहती हैं—'प्यारे ! हम तो तुम्हारी दासी हैं, तुम्हारे चरणों पर निछावर हैं।' श्रीमद्भागवत १०।३।१२ में भी देखिए। गोपियाँ कहती हैं—'प्यारे ! हम तुम्हारी बिना मोलकी दासी हैं।' 'तेऽशुल्क-दासिका' का प्रयोग श्रीमद्भागवत में देखा जाता है। इस

(१२०)

प्रकार माधुर्यभाव में भी दास्य भावना देखी जाती है। श्रीरामचरितमानस तथा अन्य रामायणों में श्रीसीताजीने स्थान-स्थान पर अपने को दासी ही कहा है। अहंकार को भगवान् में समर्पित करने के लिए भक्त में दास्यभाव आना अनिवार्य है। सेवा भाव दास्यभक्ति की मुख्य विशेषता है। स्वामी रामानुजाचार्यने जोरदार शब्दों में कहा है कि यह जीव दास ही हो सकता है और अचिन्त्य भगवान् सेव्य स्वामी रूप हैं। 'श्रीमद्भागवत-रहस्य' में स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजीने कहा है कि सभी भक्तों में 'दास्य भावना' आना आवश्यक है। तुलसीदास, मूरदान, कबीरदास, उद्धव, विदुर, ब्रह्मा, शंकर, सूर्य आदि सारे देवता भी भगवान् के दास ही कहे जाने योग्य हैं। तुलसीदासजीने दास्यभाव को ही सर्वोपरिभाव कहा है।

श्रीतुलसीदासजी की रामभक्ति दास्यभक्ति ही है। उनके सम्पूर्ण रामभक्ति साहित्य में दास्यभक्ति ही सर्वत्र झलकती है। हनुमान की तरह निरभिमानिता दास्यभाव से ही जाना संभव है। रामभक्ति का सूक्ष्म तथा सर्वोच्च मूल्यांकन करने में तुलसीदासजीने पूर्ण प्रयास किया है। रामको किसीने निर्गुण ब्रह्म कहा है, किसीने सगुण ब्रह्म कहा है। किसीने उनकी निर्गुण भक्ति का निरूपण किया है, किसीने उनकी सगुण भक्ति का निरूपण किया है। उन्हें जिस रूप में जिसने देखा है, उसी रूप में वर्णन किया है। सबका देखना और सबका वर्णन अत्यन्त दिव्य है और सब सदा सत्य हैं, शाश्वत हैं, नित्य हैं।

तुलसीदासजी की भक्ति का सिद्धान्त कितना ऊँचा है तथा कितना व्यापक, विशाल और सूक्ष्म है, इसका ठीक-ठीक

अनुमान करना अत्यन्त कठिन है। उनकी भक्ति में नाना ज्ञान, विज्ञान, वैराग्य, चरित्र निर्माण की बातें तथा सभी धर्मशास्त्रों की बातें निहित हैं। नाना निगमागम की बातें तो हैं ही, साथ ही उनकी कुछ अपनी विशेष अनुभूति की बातें भी अवश्य हैं जैसे उनकी भक्ति का अनिवार्य अंग दैन्यभाव, दास्यभाव है। उनके विचार में दीन भावना भक्ति को सजीव बनाने के लिए आवश्यक है। वे अपने को भगवान् राम का दास, सेवक कहते हैं देखिए :—

“हौं कहारत सबु कहत, राम सहत उपहास ।

साहिब सीतानाथ सो, सेवक तुलसीदास ॥”

उन्होंने श्रीरामचरितमानस के अतिरिक्त अपनी अन्य रचनाओं में विशेष रूप से विनयपत्रिका, कवितावली, दोहावली आदि में अपने दैन्यभाव का विराट् तथा अद्भुत परिचय दिया है। वास्तव में कोई भी साधक उनके अद्भुत चिन्मय उद्गार से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता है—

“राम सो बड़ो है कौन, मोसो कौन छोटी ।

राम सो खरो है कौन, मोसो कौन खोटी ॥”

वे भगवान् राम के सामने अपनी दुर्गत, अपनी हीनता, अपनी असमर्थता का वर्णन करते हुए कहते हैं कि “हे भगवान् राम ! मेरा हृदय तो आपका भवन ही है, किन्तु उसमें बहुत से अवगुण रूपी चोर प्रवेश कर गए हैं और उपद्रव करते रहते हैं अर्थात् भक्ति-साधना करने में बाधा, विघ्न उपस्थित करते रहते हैं :—

“मैं केहि कहौं विपति अति भारी ।

भी रघुनार धीर हितकारी ॥

सम हृदय भवन प्रभु तोरा ।
तहँ बसे आए बहुत चोरा ॥”
वे भगवान् रामको पतितपावन, पापपुञ्जहारी आदि
बहते हुए और अपने दोषों को प्रगाढ़ रूप में प्रदर्शित करते
हुए कहते हैं—
“माधव ! मो समान जग माहीं ।

सब विधिहीन, मन्त्रीन, दीन अति, लीन विषय कोउ नाहीं” ।

श्री डोंगरेजी महाराज रामभक्ति के प्रसंग में ‘तत्त्वार्थ
रामायण’ में कहते हैं कि रामभक्ति के लिए श्रीराम के
स्वच्छ, परम आदर्श चरित्र को अपनाना अनिवार्य ही है ।
बिना रामचरित अपनाए कोई रामभक्त नहीं हो सकता है ।
उन्होंने चरित्र की व्याख्या भी विस्तार पूर्वक की है ।
श्री डोंगरेजी महाराज के विचारानुसार चरित्र का अर्थ शास्त्र-
सम्मत आचार ही है । भक्त बनने के लिए शास्त्र-सम्मत
आचार अपनाना भक्ति साधना का अपरिहार्य अंग ही बहना
चाहिए । श्रीमद्भगवद्गीता १६।२४ के अनुसार भी शास्त्र-
मर्यादा के अनुकूल आचार अपनाने पर ही रामभक्ति का पक्का
रंग चढ़ता है । रामभक्त के जीवन में संयम, सदाचार,
मानव-सेवा भावना तथा लोक, शास्त्र की मर्यादा का पालन
होना चाहिए । राम की तरह लोक मर्यादा का पालन करने
से ही रामभक्ति की शोभा है ।

रामभक्त तुलसीदासजीने स्वयं मर्यादा का पालन किया
है और उनका दैन्यभाव भी उच्च कोटि का है । उन्होंने
जितने अपने दोषों, अवगुणों का दिग्दर्शन कराया है, उतने
दुर्गुण वास्तव में उनमें नहीं थे । भगवान् राम की तरह

उनमें विनम्रता थी। विनम्रता की ऊँचाई में उन्होंने अपने अवगुणों का वर्णन किया है। श्रीराम यद्यपि भगवान् हैं, फिर भी वे अपने को सदा सामान्य मनुष्य ही कहते हैं। भिन्न-भिन्न रामायण और पुराण में उनकी विनम्रता की कितनी ऊँचाई है, यह साधारण मनुष्य कल्पना भी नहीं कर सकता है।
देखिए :

“सुनहु सकल पुरजन मम वानी।

कहुँ न कछु ममता उर आनी॥

नहिं अनीति नहिं कछु प्रभुनाई।

सुनहु करहु जो तुम्हहि सोहाई॥

जौं अनीति कछु भाषौ भाई।

तो मोहि बरजहु भय बिसराई॥

तुलसीदासजी का अपना अनुभव है कि दीनता का निवेदन करने से दुर्गुण शीघ्र ही मिटते हैं और भगवान् अत्यधिक प्रसन्न होते हैं। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि दैन्यभाव आत्मशुद्धि का मूल साधन है। इस कलिकाल में दीनभाव अपनाने से जीव का निस्तार निश्चयरूप से ही होता है। जिसमें दीनभाव उदय होता है, उसका कल्याण कोई रोक नहीं सकता है। लेकिन यह दीनभाव सच्चा आत्मज्ञान, परमात्मज्ञान होने पर ही होता है अथवा प्रभुकृपा से यह सात्त्विक गुण हृदय में प्रकट होता है। विनम्रता का भाव सारे सात्त्विक गुणों का मुकुटमणि ही कहने योग्य है।

दैन्यभाव के अतिरिक्त परहित की भावना भी परम पूज्य संत तुलसीदासजी के भक्तिमार्ग का आवश्यक अंग है। परहित के समान कोई दूसरा श्रेष्ठ गुण नहीं और परपीड़ा के समान

कोई अन्य पाप, दुर्गुण नहीं है। इसीलिए तुलसीदासजीने मानव-सेवा को भक्तिभवन की आधारशिला के रूप में अभिव्यक्त किया है और सेवाभाव को अत्यन्त अनिवार्य बताया है—

“सेवक सेव्यभाव बिनु, भव न तरिअ उरगारि ।”

इतिहास भी इसका साक्षी है कि जो लोग आस्तिक हैं, भगवद्भक्त हैं, उन्होंने इस लोक में मानवता की सेवा कर भक्तिभावना को सदा उजागर किया है। यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि तुलसीदासजी की भक्ति-व्याख्या अपने ढंग की अनूठी है तथा विलक्षणता से पूर्ण है। यह कहना अक्षरशः सत्य है कि उन्होंने पौराणिक चेतना को भक्ति से ओत-प्रोत करते हुए एक नव्य रूप ही प्रस्तुत किया है। चिरप्रथित पौराणिकता को तरल, प्रतीकात्मक तथा प्रगीतात्मक बनाया है। उन्होंने भक्ति के इस रूप को दास्य भक्ति कहा है। विश्वसेवा, जीवसेवा, मानवसेवा सब दास्य-भक्ति के ही अन्तर्गत हैं। कबीरदास, सूरदास, दूलनदास, कुम्भनदास, दादूदयाल आदि सारे भक्त अपने को दास ही कहते हैं। शिव, ब्रह्मा, इन्द्र, सूर्य आदि सारे देवगण भगवान् के दास ही कहे गये हैं, इसकी चर्चा स्वामी श्रीअखण्डानन्द सरस्वतीजी की पुस्तक “भागवत-रहस्य” में विस्तार रूप से है। दास्यभक्ति सबसे ऊँची भक्ति कही गई है। कुछ सन्तों ने कहा है कि यदि गोपीभक्ति को भी दास्यभक्ति कही जाए तो इसमें संशय नहीं करना चाहिए। दास भावना सर्वोपरि भावना है। भगवान् भी अपने को भक्तों का दास कहते हैं। आद्यशंकराचार्यजी के भक्तिमय स्तोत्रों की व्याख्या करने में श्रीमधुसूदन सरस्वतीजीने आद्यशंकराचार्य को भी दासभक्त के

(१२५)

रूपमें वर्णन किया है। स्वामी रामानुजाचार्यने अनेकों स्थानों पर कहा है कि जीव भगवान् का दास ही हो सकता है और दासभावना के बिना जीव का कल्याण नहीं हो सकता है। अतः तुलसीदासजी की दास्य भक्ति भावना अनूठी है और नव्य रूप में है। इसे महाभाव या शरणागति का सर्वोपरि उच्च भाव कहना उचित ही है। इस व्यक्त जगत् को राम रूप समझकर इसकी सेवा करना दास्यभक्ति ही है। उ होने स्पष्ट ही कहा है :—

“जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि”

तुलसीदासजी की रामभक्ति मर्यादापूर्ण है। शील की मर्यादा का मनन-चिन्तन भी भक्ति के अन्तर्गत है। उनकी रामभक्ति आर्य संस्कृति का दर्पण भी कहने योग्य है। उनकी भक्ति में सार्वभौमिक दृष्टिकोण हैं, भले ही उनकी विशेषदृष्टि भगवान् राम की ओर है। भक्तों के चरित्र में भक्ति के सारे सिद्धान्त पिरोये हुए हैं। चारित्रिक पूर्णता भी भक्ति का आवश्यक अंग बताया गया है। धर्मचर्चा तथा पवित्र चरित्र का विकास भक्ति से पृथक् नहीं ही कहा जा सकता है। अधिकांश सन्तों ने भी चरित्र निर्माण को भक्ति का एक आवश्यक अंग घोषित किया है। तुलसीदास की समस्त रचनाओं के अनवरत अनुशीलन द्वारा यह पूर्ण स्पष्ट हो जाता है कि चरित्र निर्माण तथा भगवान् की भक्ति एक दूसरे पर निश्चय ही प्रभाव डालते हैं। उनके श्रीराम धर्म के प्रतीक हैं और उनकी रामभक्ति मूलतः धर्म साधना ही है। उनकी धर्म-दृष्टि अत्यन्त सूक्ष्म है और उनका पर्यवसान भक्ति में ही देखा जाता है। वास्तव में धर्म और दर्शन को भक्ति से अलग सिद्ध नहीं किया जा सकता है। तुलसी दर्शन मोमांसा

में अनेक विद्वान् संतों जैसे डा० उदयमानु सिंह ने बड़ी ही विद्वता के साथ भक्ति के अन्तर्गत धार्मिक पक्षों का विस्तार पूर्वक अध्ययन प्रस्तुत किया है। डा० माता प्रसाद गुप्त ने भी भक्ति के अन्तर्गत दार्शनिक विवेचना प्रस्तुत की है। "तुलसी की समन्वय साधना" में डॉ० राजेन्द्र सिंह ने भी निष्कर्ष के रूप में यह कहा है कि तुलसीदासजी की विवेचना में यह विशिष्टता है कि धर्म, दर्शन, चरित्र, कर्म, ज्ञान, भक्ति पृथक् नहीं हैं। सभी का सामंजस्य ही सच्ची रामभक्ति है।

अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैत आदि सारे सिद्धान्त तुलसीदासजी की भक्तिभावना में समरसता प्राप्त कर अपने दार्शनिक भेदभाव से मुक्त हो इस प्रकार तरल बन गए हैं कि हमें पग-पग पर यह आभास होता है कि तुलसीदासजी का पक्षपात किसी एक मत के साथ नहीं है। भक्ति की भूमिका में जीव की आपेक्षिक स्वतंत्रता की रक्षा करते हुए वे विशिष्टाद्वैती दृष्टिकोण को अपनाते हैं और विशुद्ध भक्त के रूप में राम को स्वामी तथा अपने को दास स्वीकार करते हैं। उनकी रामभक्ति दास्यभक्ति के रूप में है। इसमें सेवाभावना की पराकाष्ठा और अहंकारशून्यता का भव्यरूप दीखता है।

रामचरित्र और रामभक्ति के वहाने गोस्वामी तुलसीदासजीने भारतीय संस्कृति का भी दिग्दर्शन कराया है। वेदव्यास, वाल्मीकि और कालिदास आदि ने भी भारतीय संस्कृति को प्रस्तुत किया है, लेकिन पूज्य गोस्वामी तुलसीदासजी की तरह नहीं। तुलसीदासने भारतीय संस्कृति में मर्यादा की भावना तथा भक्ति की भावना को मूल उत्स ही कहा है।

(३९)
(१०७)

नैतिक और आध्यात्मिक मनुष्य का जैसा सूक्ष्म विश्लेषण एवं चित्रण गीस्वामी तुलसीदास ने किया है, वैसा किसी अन्य महापुरुष ने नहीं किया है। उनकी भक्ति साधना और सन्त-प्रकृति का दिव्य प्रमाण मानव-संस्कृति का सर्वोच्च आयाम है। धर्मशील तथा भक्त के लिए इस संसार में कुछ भी अप्राप्य नहीं है। परम-भक्त कवि तुलसीदासजी के काव्य में भक्ति की अनेक अजस्त्र धारा प्रवाहित होती है और लौकिक जीवन का सभार कम मिलता है। यह सच है कि भक्त के जीवन में शिष्टता एवं संस्कृति के सभी श्रेष्ठ उपादान अवश्य ही आ-जाते हैं। संक्षेप में यही कहना चाहता हूँ कि तुलसीदासजी का भक्ति-तत्त्व सामाजिक विचार तथा नैतिक संस्थापन का भी उद्घाटन करता है अर्थात् उन्होंने रामभक्ति का नवीन रूप प्रस्तुत किया है।

सचमुच में तुलसीदासजी की 'रामभक्ति' समझना आसान नहीं है। उनका राम सर्वोपरि परमात्मा है। उस परमात्मा की तुलना किसी से नहीं की जा सकती है। उसकी प्राप्ति करना, उसी के प्रेम में मन, बुद्धि चित्त सब कुछ लगा डालने मानव जीवन का परम उद्देश्य है। वह राम सर्वत्र है। पिण्ड में भी है, ब्रह्मांड में भी है। पिण्ड ब्रह्मांड का लघु रूपा है और ब्रह्मांड पिण्ड का विराट् रूप है। जो ब्रह्मांड का संचालन और संरक्षण करता है, वही पिण्ड का भी संचालन और संरक्षण करता है। उसी एक राम का प्रकाश सर्वत्र है। रेणु के छोटे-छोटे कणों में भी वही प्रकाशित है और विराट् ब्रह्मांड में भी उसी का प्रकाश है। जैसे चातक का प्रेम अनन्य, अविचल होता है, उसी प्रकार रामप्रेम का तुलसीदासजी चातक ही हैं। देखिए—

“एक भरोसो एक बल एक आस विश्वास ।

एक राम घनश्याम हित चातक तुलसीदास ॥”

तुलसीदासजी का अनुभव सत्य ही है कि हृदय की स्वभाविक गति और मनकी वास्तविक दौड़ विषयों की ओर ही होती है। अज्ञानी संसारासक्त अधम प्राणी विषयों के सेवन में ही अमृत-रस समझता है। उसका मन विषय-सुख में माता-माता फिरता है। उससे कभी तृप्ति नहीं होती, कभी जी नहीं भरता। भला घी से कहीं अग्नि शांत हो सकती है ?

“ बुझै न काम-अग्नि तुलसी कहूँ विषय भोग बहुधीते”

इसमें मानव-संस्कार के सुधार या सदाचार की ही तो शिक्षा प्रकाशित है। बिना सदाचार और सच्ची मानव संस्कृति के रामभक्ति नहीं हो सकती है। इस प्रकार तुलसीदासजी की रामभक्ति में दार्शनिक, धार्मिक, चारित्रिक, सामाजिक और साहित्यिक सौन्दर्यमूलक विचारधारा का भी संगम कहा जा सकता है। इसमें उनका प्रत्यक्ष अनुभव, सूक्ष्म अवेक्षण और गहन अनुशीलन भी है। साधना के दृष्टिकोण से उन्होंने रामनाम को ही मूल माना है। उनका अपना विश्वास तो ऐसा है ही कि रामनाम की साधना से जीवन के चारित्रिक, पारमार्थिक आदि सारे विकास स्वयं ही हो जाते हैं। अन्य विकास के लिए पुरुषार्थ करने की आवश्यकता नहीं रह जाती है। सचमुच में यही शाश्वत, सनातन, पुरातन वैदिक साधन भी है। इसे शास्त्रों तथा संतोंने सभी अन्य साधनाओं का भी प्राण कहा है। हाँ, मुझे भी ऐसा लगता है कि रामनाम में विश्वास हो जाने पर ज्ञान की आवश्यकता ही समाप्त हो जाती है। रामनाम की चर्चा अगले शीर्षक में विस्तार से देखें, जो रामभक्ति का ही प्रधान अंग है।



❀ रामनाम की साधना ❀

रामनाम की साधना श्रुतिमार्ग है, परम्परा का मार्ग है तथा सर्वकल्याण मार्ग है। वेदमत, संतमत, लोकमत सभी का सार यह रामनाम साधना ही है। रामनाम के साधकों को यह पूर्ण विश्वास कर लेना चाहिए कि पूर्ण ब्रह्म परमेश्वर का नाम ही राम है। उनसे कोई बड़ा नहीं है। उनके अंग रूप में, दास रूप में सभी देव हैं। सभी देवताओं के प्रति आदर-भावना अवश्य रहनी चाहिए, लेकिन कोई देवता राम की तरह पूर्णब्रह्म परमेश्वर नहीं हो सकता अर्थात् एक सर्व-शक्तिमान परमेश्वर में जैसे राम में एक निष्ठा होना आवश्यक है, यही उपासनाशास्त्र की उद्घोषणा है।

रामनाम के साधकों को यह हृदय में दृढ़ विश्वास प्रतिष्ठित कर लेना चाहिए कि इस रामनाम से बढ़कर कोई महामंत्र है ही नहीं। सारे मंत्रों में शक्ति-सृजन करने का काम सम्राट के रूप में रामनाम ही करता है। साधकों का जीवन कैसा होना चाहिए, यह शिक्षा रामनाम के साधकों जैसे भरत, गणेश, हनुमान, वाल्मीकि, नारद, ध्रुव, प्रह्लाद, शुक, सनकादि आदि साधकों के जीवन, चरित्र से ही लेनी चाहिए। हमारे शास्त्रों में आदर्श साधकों का चरित्र भरा पड़ा है। साधना की दृष्टि से साधक भिन्न-भिन्न कोटि के बताए जा सकते हैं जैसे जो साधक प्रतिदिन एक लाख रामनाम जपते हैं तो उन्हें उत्तम कोटि के साधक कह सकते हैं। जो प्रतिदिन पचास हजार रामनाम जपते हैं तो उन्हें मध्यम कोटि के साधक कह सकते हैं और जो प्रतिदिन पचीस

(१३०)

हजार रामनाम जपते हैं तो निम्न कोटि के साधक कह सकते हैं। इसी प्रकार भावना के स्तर में भी भिन्नता साधकों में होती है। इस प्रसंग में यह संकेत करना चाहता हूँ कि साधना और भावना दो वस्तु हैं। साधना से भावना अधिक महत्त्वपूर्ण है। साधना से लक्ष्य पर पहुँचने में बहुत समय लगते हैं तथा बहुत कठिनाई भी होती है, लेकिन भावना से लक्ष्य की प्राप्ति में समय कम लगते हैं। भावना का विकास सत्संग से तथा नाम जप की साधना से एवं पूर्वजन्म के संस्कार से ही होता है। भावुक भक्तों की संगति से भी भाव का विकास होता है। भक्ति शास्त्रों में भावना वस्तु की अत्यधिक प्रशंसा की गई है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी “भाववस्य भगवान्” लिखकर भक्ति के भावजगत् की अधिक महिमा दर्शायी है।

भक्तराज हनुमानजी की जीवनी अनुपम निष्ठा एवं उनके आदर्श भावों से रामभक्तों को निश्चय ही उत्कृष्ट प्रेरणाएँ मिल सकती हैं। हनुमानजी की तरह रामनाम के साधक को सेवक तथा विनम्र बनना चाहिए। जब हनुमान जी लंका से सीताजी का समाचार लेकर लौटते हैं और भगवान् श्री राम उनके महान् कार्यों की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं तब हनुमानजी विनम्रता से अपने को गलाकर बोलते हैं “कृपालु प्रभो ! बंदर का बस यही पुरुषार्थ है कि वह एक डाल से दूसरी डाल पर कूदता है। यदि कोई बड़ा कार्य सम्पन्न हुआ है तो इसमें सारा प्रताप आपका ही है।” ऐसा ही हर भक्त को बनाना चाहिए।

भरतजी की स्थिति अद्भुत है। तुलसीदासजी उनकी स्थिति का वर्णन करते हैं :—

**“बैठे देखि कुशासन जटा मुकुट कस गात ।
राम राम रघुपति जपत स्त्रवत नयन जलजात ॥”**

भरतजी की भाव-विभोर स्थिति देखकर हनुमानजी गद्गद हो जाते हैं और भगवान् श्रीराम के आने का शुभ समाचार सुनाते हैं। तात्पर्य यह है कि भक्त सदा भगवान् के भजन, स्मरण में लगे रहते हैं और हनुमानजी की तरह हमें अन्य भक्तों की यथा योग्य सेवा भी अवश्य करनी चाहिए।

वाल्मीकि रामायण में ऐसा उल्लेख आया है कि जब श्रीरामजी साकेत जाने लगे तो हनुमानजीने दृढ़ निष्ठा के साथ कहा—“हे राम ! आपसे बढ़कर आपका नाम है, अतः आपका नाम सदा लेना रहूँ और मुझे अन्यत्र जाने से क्या लाभ ?” इसी प्रकार जो रामनाम का साधक है, वे जहाँ हैं, वहीं अधिक से अधिक रामनाम का जाप करें। यहाँ-वहाँ जाने से क्या लाभ ?

रामनाम साधन और सिद्धि दोनों हैं। रामनाम से सम्बंधित सत्संग श्रवण करते रहना चाहिए। केवल सत्संग श्रवण की ही इतनी महिमा है कि जीव का पूर्ण उद्धार हो जाता है। अधिकांश संतों का यही अनुभव है कि भाव जैसे दिव्य वस्तु का जन्म सत्संग और नामजप से ही होता है। भाव का शरीर अकस्मात् नहीं बनता है, बल्कि जैसे-जैसे सत्संग एवं साधना की क्रिया अधिक होती जायगी, वैसे दिव्यभाव का शरीर भी बनता जायगा। सद्शास्त्र तथा सद्ग्रन्थों का अनुशीलन श्रद्धा पूर्वक सदा करना चाहिए। इन सद्ग्रन्थों में अमूल्य रत्न भरे हुए हैं जिनकी प्राप्ति धीरे-धीरे ही होती है। अपनी योग्यता के अनुसार ही प्राप्ति होती है।

संसार मुख्यतः दो प्रकार का बताया जा सकता है—

(१) बाहरी संसार और (२) मनोमय संसार या वासनात्मक संसार । साधक को बाहरी संसार से अधिक हानि नहीं है । मनोमय संसार या अपने मन के भीतर का वासनामय संसार ही साधना का बाधक है । इस वासनामय संसार का नाश रामनाम जप से ही होता है । इसी वासनामय संसार के लिए तुलसीदासजी कहते हैं:—

“नाम लेत भवसिन्धु सुखाहि”

तुलसी, सूर आदि सभी नामनिष्ठ महापुरुष महान् होने के बावजूद भी अपने अवगुणों को प्रकट करने में लेशमात्र भां संकोच नहीं करते थे, इसी प्रकार हम सभी नाम-साधकों को अपने-अपने अवगुणों को प्रकट करने में संकोच नहीं करना चाहिए । यदि हम बुरे हैं तो अपनेको बुरा कहने में क्या हानि है ? बुराई कहने से ही बुराई दूर होती है । अतः अपनी बुराई कहना हर प्रकार से मंगलकारी तथा हितकारी है । अपने गुणों को छिपाकर रखना चाहिए । अपना गुण कहने से वे नष्ट हो जाते हैं, अतः भूलकर भी अपना गुण नहीं कहना चाहिए । मान, प्रतिष्ठा, यश पाने की कामना भूल कर भी नहीं करनी चाहिए । इनका रस लेने से अहंकार की भावना ही होती है । शुभाशुभ के विचार रामनाम के जप से ही निकलकर निर्विचार की स्थिति प्राप्त होती है । रामनाम के जप के प्रसंग में तीन बातें याद रखनी चाहिए:—

(१) रामनाम का उच्चारण गम्भीरतापूर्वक नियमित गति से होना चाहिए (२) रामनाम की मधुरता का आस्वादन लेते हुए जप करना चाहिए और (३) रामनाम का चिन्तन जप के साथ होना चाहिए । रामनाम के

(१३३)

चिन्तन का अर्थ राम के रूप, गुण, शील तथा उनकी भगवत्ता की लीला का ध्यान होना चाहिए ।

रामनामजपसे अधिक लाभ रामनामका कीर्तन करने से है । जोर-जोर से रामनाम लेना ही रामनाम कीर्तन है । अनेक संतोंने कहा है कि रामनाम जोर-जोर से लेने पर घास, बृक्ष, भूमि, कीड़े-मकोड़े सभीको सुख मिलते हैं और जड़ चेतन सबका मंगल होता है । जहाँ तक रामनाम की दिव्य ध्वनि जाती है, वहाँ तक का वातावरण निश्चय ही पवित्र बन जाता है । ज्यादा जगह भटकने से अच्छा यही है कि एक जगह बैठकर ही रामनाम का कीर्तन किया जाय । संत, शास्त्र तथा सत्संग में श्रद्धा रहने से साधना में प्रगति और प्रकाश शीघ्र ही देखे जाते हैं । रामनाम जैसा कोई ठोस साधन अन्य नहीं है । रामनाम रटने से ही मन की क्रियाओं में परिवर्तन हो जाता है और विचारों में पवित्रता आ जाती है । अन्य साधनों से भले ही अहंकार बढ़ जाते हों, लेकिन रामनाम की साधना से अहंकार केवल नष्ट ही होते हैं । रामनाम जप की क्रिया गुणातीत दिव्य क्रिया है । रामनाम का ज्ञान उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना रामनाम का जप, कीर्तन करना महत्त्वपूर्ण है । अन्य साधन क्रियाओं के सम्बन्ध में यह कहा गया है कि क्रिया से रहित ज्ञान व्यर्थ है और ज्ञान से रहित क्रिया व्यर्थ है अर्थात् ज्ञान और क्रिया दोनों का योग आवश्यक है । किन्तु रामनाम की साधना में जप तथा कीर्तन की क्रिया ही प्रधान है और ज्ञान को अनिवार्यता नहीं है । क्रिया के बाद ज्ञान स्वतः आ जाते हैं ।

पद्मपुराण में दस नामापराध बताये गये हैं, अतः उन दस नामापराधों से बचकर रामनामजप तथा कीर्तन करना चाहिए । रामनाम जापकों के कल्याणार्थ ही दस नामापराधों

का वर्णन कर रहा हूँ :--

भिन्न-भिन्न संतोंने भिन्न-भिन्न रूप से नामापराधों की चर्चा की है, लेकिन मैं यहाँ बहुत ही संक्षिप्त रूप से दस नामापराधों की चर्चा करना चाहता हूँ और ठोस बातें ही लिखने की चेष्टा करूँगा।

(१) सत्पुरुषों की निन्दा—जो सत्पुरुष रामनाम या भगवन्नाम का यश फैलाते हैं, उनकी निन्दा नाममहाराज तथा भगवान् कभी सहन नहीं कर सकते हैं, अतः भूलकर भी भगवन्नाम के अनुरागी संतों की निन्दा नहीं करनी चाहिए।

(२) शिव और विष्णु को पृथक् समझना—
शिव और विष्णु एक ही भगवान् के भिन्न-भिन्न नाम हैं। नाम में भिन्नता होने से उनकी शक्ति और उनके गुण में भिन्नता नहीं है। जिस प्रकार एक ही व्यक्ति के दो नाम हों तो दोनों नामों में भिन्नता समझना अज्ञानता के अलावा और क्या कहा जा सकता है? ठीक इसी प्रकार वैष्णवजन शिव और विष्णु को एक ही समझते हैं और एक ही समझना उचित है। दो समझना नामापराध है क्योंकि नाम सम्बन्धी ही अपराध है।

(३) नामोपदेष्टा गुरु की निन्दा—जो गुरु रामनाम या किसी भगवन्नाम का उपदेश देते हैं, उनमें अश्रद्धा करना नाम सम्बन्धी अपराध ही माना जाता है। गुरुका अपमान कर हम साधना पथ पर आगे नहीं बढ़ सकते हैं और नाममहाराज कभी प्रसन्न नहीं हो सकते हैं। जो गुरु नामकी साधना बताते हैं और फिर उन्हीं पर अविश्वास, अश्रद्धा करते हैं तो नामहाराज रूष्ट होकर हमें फल नहीं देंगे। अतः नामोपदेष्टा गुरु, नाममहाराज तथा भगवान् तीनों एक ही हैं, ऐसा समझना ही उचित है।

(१३५)

(४) श्रुति एवं धर्मशास्त्र की निन्दा करना—

रामनाम तथा सभी भगवन्नाम का गुणगान श्रुति तथा धर्मशास्त्रों में मिलता है। धर्मशास्त्र उसीको संतोंने कहा है जिसमें भगवान् के नाम, रूप, लीला, धाम और अनन्त गुणों का वर्णन रहता है। धर्मशास्त्र भगवान् के ही विग्रह हैं, अतः धर्मशास्त्र, भगवान् और भगवान् के नाम में कोई अन्तर नहीं है। भगवन्नाम तथा भगवान् से अलग धर्मशास्त्र को मानकर उसकी निन्दा करना भगवान् की निन्दा या भगवन्नाम की ही निन्दा है, अतः धर्मशास्त्र की निन्दा करने से साधना में प्रगति नहीं हो सकती है।

(५) रामनाम या भगवन्नाम में अर्थवाद की कल्पना करना—रामनाम या भगवन्नाम की महिमा, महत्ता में विश्वास नहीं करना तथा इसमें झूठी प्रशंसा एवं कल्पनामात्र बताना भगवन्नाम का अर्थवाद कहा जाता है। यह पूर्ण सत्य है कि भगवान् के नामकी अमिट महिमा है। शास्त्रों में जो कुछ नामकी महिमा कही गयी है तथा संत-महात्माओं ने नामके सम्बन्ध में जितना भी गुण गाया है, उसमें कहीं भी अर्थवाद नहीं है। जिस प्रकार भगवान् की महिमा अवर्णनीय है, उसी प्रकार नाम की महिमा भी अनिर्वचनीय है। नाम की महिमा की कोई सीमा नहीं है। भगवान् भी अपने नाम का गुण गा नहीं सकते, इस आशय को प्रकट करने के लिए महामना गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—

“राम न सकहि नाम गुन गाई”

कुछ संतोंने इस प्रसंग में कहा है कि तुलसीदासजी ने नामापराध से बचने के लिये ऐसा लिखा है। भगवन्नाम का गुण असीम, अनन्त अगाध नहीं कहना भी नामापराध है क्योंकि

(१३६)

भगवन्नाम का गुण अनन्त है और जो ऐसा नहीं कहते वे सबसे बड़े नामापराधी कहे जाते हैं ।

भूल से लोग नाम और नामीको दो विभिन्न वस्तु मान लेते हैं और नाम को नामी से छोटा मान लेते हैं। यह भी भगवन्नाम में अर्थवाद की कल्पना ही समझी जाती है, इस नामपराध से बचना चाहिए । पूर्व हम बता रहे थे कि राम भी अपने नाम का गुण बखान नहीं कर सकते इसका भावार्थ यह है कि नामका माहात्म्य अपार है अनन्त है । यदि कोई राजा अपने धन की सीमा जानता है तो उसका धन सीमित ही माना जायगा, किन्तु यदि स्वयं उसे उसकी थाह न हो तो उसका धन अनन्त कहा जायगा और यह समझा जायगा कि स्वयं राजा भी अपने धन की परिमिति नहीं जानता है ।

नामापराध से बचने के लिए नाम और नामी में छोटे-बड़े की वृद्धि नहीं करनी चाहिए । नामी अपने नाम से ही पहिचाना जाता है । नाम के बिना नामी की पहचान ही नहीं हो सकती है । जिस प्रकार सूर्योदय होने के पूर्व ही अन्धकार नष्ट हो जाता है और प्रकाश आ जाता है, उसी प्रकार नाम लेने की इच्छा मात्र से ही पाप भाग जाते हैं और हृदय में प्रकाश का उदय हो जाता है । यहाँ यह स्पष्ट करना चाहता हूँ कि भगवन्नाम या रामनाम भगवान् को तो प्राप्त करा ही देता है, साथ ही उससे परे भी हमें ले जाता है और वही है भगवत्प्रेम जिसे पंचम पुरुषार्थ कहा जाता है । जहाँ रामनाम है, वहीं भगवान् राम भी हैं । श्रद्धा का आभाव तथा स्वार्थ का भाव ही हमें नाम का यथार्थ फल प्राप्त नहीं होने देता है । अर्थात् रामनाम में अर्थवाद की कल्पना हमें पूर्ण सफलता पाने में बाधक है ।

(६) रामनाम या भगवन्नाम के बल पर पापकर्मों में प्रवृत्त होना छठा नामापराध है। जैसे किसी का नाम लेकर बुरा काम करें तो वह व्यक्ति कभी प्रसन्न नहीं हो सकता है, ठीक उसी प्रकार रामनाम जप भी करें और उसके बल पर बुरा कर्म करें तो रामनाम महाराज कैसे प्रसन्न हो सकते हैं ? नाम लेनेवाले को निष्पाप रहने की चेष्टा करनी चाहिए। नाम का प्रयोग तीन प्रकार से होता है—जप, स्मरण और कीर्तन के रूप में। नाम जप गुप्त हो, भावपूर्ण हो और निष्काम भाव से हो। नाम स्मरण वह उत्तम है जिसमें चित्त भगवान् में हो तथा नाम कीर्तन वह उत्तम है जो जोर-जोर से हो। रामनाम परम गोपनीय तत्त्व है। यह निरन्तर मनन करने योग्य तथा जपने योग्य है। इसका मूल्य अपने ज्ञान और अपनी दृष्टि के अनुसार ही हम लगाते हैं, यह भी नामापराध है। जैसे मणि का गुण शाक-वणिक क्या जाने ? उसका मूल्य तो कोई जौहरी ही लगा सकता है। जिसकी जितनी पहुँच है, उतना ही मूल्य वह रामनाम का लगाता है। इसका प्रयोग केवल भगवत्प्रेम के लिए ही होना चाहिए।

(७) रामनाम की साधना अन्य साधनाओं के समान समझना भी नामापराध है। यूँ तो कुछ संतोंने रामनाम की महत्ता सभी भगवन्नामों से अधिक बतायी है, लेकिन अधिकांश संतों का विचार और मेरा निजी विचार यह है कि भगवन्नामों में बड़ा-छोटा समझना भी एक प्रकार का नामापराध ही है। इस सम्बन्ध में इस लेखक की पुस्तक “भगवन्नाम रहस्य” देखनी चाहिए। किसी भी सम्प्रदाय में देखिए तो भगवन्नामों में भले ही भेद हो,

(१३८)

लेकिन नामजप में भेद नहीं देखा जाता है। किसी एक सम्प्रदाय में किसी नाम की मुख्यता है तो किसी दूसरे सम्प्रदाय में दूसरे नामकी मुख्यता है। पर नामजप को सब कोई सर्वश्रेष्ठ साधन मानते हैं। नामजप स्वयं ही सर्वसमर्थ है और अन्य किसी साधन की आवश्यकता नहीं रहती है। नामजप में सबसे पहले यह बात दृढ़ करनी पड़ती है कि नामजप का साधन सर्वोपरि है। हृदय में यह भाव आना अत्यावश्यक है। धर्म, व्रत, दान आदि शुभ कर्मों के समान रामनामजप को समझना नामापराध है। रामनामजप के समान अन्य साधन को बताना रामनाम का अपमान करना है। रामनाम के समान कोई भी धर्म या साधन नहीं हो सकता है। सारे धर्मों का प्राणरूप रामनाम है। किसी नामनिष्ठ संतने ठीक ही कहा है कि यदि व्यक्तिगत धर्म पथ्य के समान है तो रामनाम औषधि के समान समझना चाहिए। यदि पथ्य औषधि के विपरीत है तो यह त्यागा जा सकता है, लेकिन औषधि रोग निवारण के लिए अधिक आवश्यक समझा जाता है, अतः यह त्यागा नहीं जाता है। अर्थात् पथ्य का सामान्य मूल्य है और औषधि का विशेष मूल्य है। यहाँ “धर्म” की बात सामान्यधर्मजनित की जा रही है जिसे मानवधर्म, गृहस्थधर्म आदि भी कहा जाता है। रामनामजप विशेष धर्म है, परम धर्म है जो सामान्य धर्म से निश्चय ही श्रेष्ठ है। रामनाम ईश्वर का परिचायक है, यह बराबर स्मरण रखना चाहिए। गाँधीजीने “रामनाम” पुस्तक में कहा है कि—रामनाम परमात्मा, परमेश्वर, अल्लाह, खुदा, गौड है अर्थात् उससे श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है। सारे धर्म रामनाम से प्रेम करने के लिए ही किए जाते हैं। अतः

सामान्य धर्म रामनामजप के लिए छोड़ा जा सकता है यदि सामान्य धर्म रामनामजप का विरोधी हो जैसे भक्त प्रह्लादने पिता को छोड़ा और मीराबाईने अपने परिवारों को छोड़ा। यदि रामनामजप में सामान्य धर्म सहायक है तो ऐसी स्थिति में सामान्य धर्म छोड़ना भी नामापराध है, यह भी स्मरण रखने योग्य है।

(८) यह तो सत्य ही है कि रामनाम के समान जीवों को परमगति, सद्गति दिलाने वाला कोई अन्य साधन नहीं है। लेकिन पद्मपुराण में सनत्कुमारजीने देवर्षिनारदजी से नामापराध के प्रसंग में यह कहा है कि ईश्वर त्रिमुख और अश्रद्धालुओं को रामनाम का उपदेश नहीं देना चाहिए। जो रामनाम मंत्र जपना चाहता है, जो इसका महत्त्व सुनना चाहता है, केवल उन्हीं श्रद्धालु व्यक्तियों को रामनाम का उपदेश देना तथा नाम का महत्त्व बताना उचित है।

(९) रामनाम की महत्ता सुनकर भी रामनाम से जो प्रेम नहीं करता है तथा रामनाम नहीं जपता है, वह महान् नामापराधी समझा जाता है। नाममहाराज की उसपर कृपा नहीं होती है। यह नवाँ नामापराध है।

(१०) भोगों का महत्त्व ही अधिक समझकर निरन्तर भोगों में लगे रहना और भगवान् का नाम या रामनाम नहीं लेना दसवाँ नामापराध है। भोग दृष्टि से देवशरीर मनुष्य शरीर से अच्छा है लेकिन साधना की दृष्टि से और अधिक लाभ के विचार से मनुष्यशरीर ही देवता के शरीर से अच्छा है। इसे अच्छी तरह से समझने के लिए एक दूसरा उदाहरण देना अच्छा समझता हूँ। चाँदी की तरह देवशरीर है और लोहा की तरह मनुष्य शरीर है। चाँदी लोहा से

(१४०)

श्रेष्ठ है, लेकिन चाँदी पारस से सोना नहीं बन सकती और लोहा पारस से सोना बन सकता है। इसी प्रकार भोगों से देव शरीर को सुख है, लेकिन भगवत्प्राप्ति नहीं हो सकता है, रामनाम जप के द्वारा मनुष्य भगवद्रूप बन सकता है अर्थात् मनुष्य से भगवान् बन सकता है। लेकिन देवता लोग भगवद्रूप नहीं बन सकते हैं।

नामापराध बड़े भयंकर अपराध माने जाते हैं। ये अपराध किसी भी तरह से, अन्य उपायो से नहीं मिटाये जा सकते हैं। इन्हें केवल रामनाम या भगवान् के नाम ही मिटा सकते हैं। निरन्तर रामनामजप, कीर्तन में ही ऐसी प्रबल शक्ति है कि सभी प्रकार के नामापराध नष्ट हो सकते हैं। स्वामी श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी कहते हैं कि मनुष्य के जीवन में अनेक प्रकार के नामापराध होते हैं। अतः नामापराध नहीं हों और जो नामापराध हो चुके हैं, उनके नाश के लिए जोर-जोर से रामनाम लेना चाहिए। शांडिल्य भक्तिसूत्र ७५ में कहा गया है कि जो बड़े-बड़े पाप किसी तरह मिटने योग्य नहीं हैं, वे भी रामनाम जैसे भगवन्नामों से अवश्य मिट जाते हैं। अतः सारे धर्मशास्त्रों की फलश्रुति के रूप में कहा गया है कि भगवन्नाम, रामनाम जैसी शक्तिशाली कोई भी वस्तु या धर्म नहीं है। इस प्रकार निष्कर्ष यही निकला कि रामनाम जपने के समान कोई भी साधना या धर्म नहीं है।

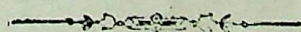
कलीपावनावतार श्रीचैतन्य महाप्रभु का सिद्धान्त है—
“नामे रुचिः, जीवे दया वैष्णवे सेवा।” भगवन्नाम की महिमा अनिर्वचनीय, अनन्त है। कलिकाल में समस्त दुखों की

(१४१)

आत्यन्तिक निवृत्ति और समस्त सुखों की प्राप्ति एकमात्र भगवान् के नाम में ही है। संसार-सागर से पार जाने के लिए, भगवत्प्राप्ति के लिए भगवन्नाम से बढ़कर कोई भी शक्तिशाली साधन नहीं है। लेकिन अनेक जन्मों का पुण्य उदय होने पर ही भगवान् का नाम हृदय में आता है। यहाँ “रामनाम की साधना” शीर्षक में मुझे सार रूप में यही कहना है कि रामनाम को सर्वोपरि समझना और विश्वास कर लेना अत्यावश्यक है। दूसरे साधन इससे अधिक महत्वपूर्ण नहीं हैं, अतः स्वाभाविक रूप से छूट भी जाते हैं। अन्य साधन सहज रूप से ही छूटने चाहिए, जानबूझकर पूर्व में ही नहीं छोड़ना चाहिए। रामनाम साधक को सर्वोत्तम गुणवान् होते हुए भी उसे अपने को दीन एवं अधम ही मानना चाहिए। मान-प्रतिष्ठा प्राप्त करने की लालसा नहीं रहनी चाहिए। जैसे विषयी मनुष्य विषयों को नहीं छोड़ता, उसी प्रकार रामनाम जप साधकों को एक क्षण भी नहीं छोड़ना चाहिए। जप की परिपक्व अवस्था का नाम प्रेमाभक्ति है जो भक्ति की उची अवस्था मानी जाती है। रामस्नेही सम्प्रदाय में एक रामनाम की ही साधना की जाती है।

राम का नाम अनन्त है, अन्त न पवै कोय ।

भीखा जस लघुबुद्धि है, रामनाम से सब सुख होय ॥



✽ रामनाम-साधना में भावना ✽

“रामनाम की साधना” शीर्षक में मैंने भावना जैसी दिव्य वस्तु पर थोड़ी चर्चा की है। लेकिन नामसाधकों के विशेष कल्याण के लिए “भावना” वस्तु पर अधिक प्रकाश डालने के लिए विशेष प्रेरणा मैं भगवान् की ही समझता हूँ।

भावना भक्ति का वास्तविक रूप है। यह भावना भगवान् से सम्बन्धित होती है जैसे घट-घट में वही एक भगवान् है। मुझे सूई चुभने से जैसी पीड़ा होती है, वैसी ही दूसरे को भी होती है। अपने जैसा दूसरे को समझना चाहिए। किसी को सताना नहीं चाहिए। किसी को दुःख नहीं देना चाहिए। कोई गाली भी दे दे, तो चुपचाप सुन लेना चाहिए। किसी बात का घमंड नहीं करना चाहिए। संसार में ऐसा कोई मनुष्य नहीं है जिसमें कोई दुर्गुण न हो, लेकिन हमारी यह कितनी बड़ी दुर्भावना है कि अपने दुर्गुणों को तो कभी देखते नहीं, लेकिन दूसरों में सदा दुर्गुणों को ही देखते हैं। जब भगवान् की भावना हमारे हृदय में आ जाती है तो हमें सब प्राणी प्यारे लगने लगते हैं और रामनाम लेने में अपार आनन्द की अनुभूति होती है।

भगवान् की भावना कितनी ऊँची है, कितनी पवित्र है, यह ठीक-ठीक वाणी द्वारा नहीं दर्शायी जा सकती है। भगवान् तो भक्तों की पवित्र भावना में ही निवास करते हैं। वे उनकी भावना में बंध जाते हैं। यह दिव्य वस्तु भावना अत्यन्त सूक्ष्म है और गहन है। भक्त ही भावना को समझते भी हैं।

भक्ति की अट्टालिका भगवद्भावना पर ही खड़ी होती है। भगवान् श्रीराम का सारा दिव्य चरित्र आदर्श मर्यादा की भावना पर ही देखा जाता है। ऋषि मुनियों के प्रति श्रद्धा, पूज्य ब्राह्मण के चरणों में नमन तथा भक्तों के प्रति करुणा का भाव-समुद्र उमड़ता हुआ ही दीखता है। भक्ति भावना में शरणागति भावना सर्वोपरि महादिव्य भावना है। “रामराज्य” में आदर्श भावना ही है।

भगवान् श्रीकृष्ण प्रेमभावना के अवतार ही कहे जाते हैं। श्रीमद्भागवत दिव्य भगवद् भाव का लहराता हुआ सुन्दर सागर ही है। ग्वालवाल का सख्यभाव और गोपियों का अगाध माधुर्य भाव दिव्यात्माएँ ही समझती हैं। यशोदा ने वात्सल्यभाव में भगवान् श्री कृष्णको ऊखल में बाँध दिया। यह कहना उचित प्रतीत होता है कि गोपियों का माधुर्यभाव समझना अति कठिन है। सचमुच में बुद्धि पर लोकोपकारी तथा कल्याणमयी भावना का शासन जाग जाए तो जीवनमें नित्य नया सुन्दर प्रभात दीख सकता है। ऊँची भावना से भगवान् श्रीकृष्णने सुदामा के चरण पखार कर प्रेम और विप्रपद-पूजा का आदर्श प्रस्तुत किया।

मन की शक्तियों का विकास मनोभावों के अनुरूप ही होता है। रामनाम की साधना अनन्त, अपार, आनन्दरससुधापान करानेवाली है। इसके प्रति सर्वोपरी ऊँची भावना करना साधक का सर्वोपरि विकास रूप ही है। संतोंने महाभाव की चर्चा कर उनकी अपार शक्ति को भी प्रस्तुत किया है। कहना यह चाहता हूँ कि भावना जब फूलती है तभी भक्ति सुमन की शोभा दीख पड़ती है। भावना जब फलती है तभी पुष्टि और मधुरता का अमृत-फल मिलता है। भावना

में ही सुन्दरता, रस माधुर्य, विवेक और आनन्द के उद्यान खिलते हैं। अतः रामनाम जप में भगवान् राम के साथ दास भावना से, सेवक भावना से निरन्तर जुड़े रहना चाहिए। भगवान् सर्वसमर्थ हैं, परम कृपालु हैं, ऐसा अचल विश्वास होना चाहिए। भाव ही मन को विभोर करने वाला होता है। भगवान् ही अनन्त नामों के रूप में हैं। सब नाम पूर्ण हैं तथा पूर्ण फलदायक हैं। जीवों को तारने वाले केवल भगवन्नाम ही हैं। रामनाम भगवान् का ही सबसे अधिक शक्तिशाली तथा माधुर्यनाम है। नामसाधकों में ही सबसे अधिक माधुर्यभाव का सृजन होता है। “विदग्ध माधव नाटक” में श्रीरूपगोस्वामीजी ने कहा है कि हरिनाम में इतना माधुर्य है कि इसका वर्णन करने के लिए कोई भाषा ही नहीं है। मनुष्य का ज्ञान भी नाम-महिमा में अत्यन्त अल्प है। ध्यान में अनेकों प्रकार के विघ्न उपस्थित हो सकते हैं, किन्तु भगवान् के नाम कीर्तन में किसी प्रकार की विघ्न बाधा नहीं है।

रामनाम वागिन्द्रिय से निकलकर समस्त इन्द्रियों को पावन बना देता है। सचमुच में वागिन्द्रिय से ही रामनाम दिव्य रूप में स्फुरित होने लगता है। नाम कीर्तन से अपना तथा सबका निश्चय ही कल्याण होता है।

“नाम कीर्तनं साधनं सर्वश्रेष्ठम्” कहा गया है।

जिस श्रीहरिनाम से जल में डूबता हुआ गजराज भी समस्त शोको से छूट गया, जिस भगवन्नाम के प्रभाव से द्रौपदीजीका वस्त्र अनन्त हो गया, जिस प्रभुनाम के प्रताप से भक्त नरसी मेहताजी के सम्पूर्ण कार्य बिना उद्योग के हो सिद्ध हो गए, जिस रामनाम से कबीरजी तथा रैयासजी

(१४५)

सिद्धों की श्रेणी में प्रसिद्ध हो गए एवं जिस हरिनाम के प्रेमावेश में श्री गौरांगमहाप्रभु को शरीर का भी ज्ञान जाता रहा, हा ! उस हरिनाम के प्रति हृदयमें प्रेमभावना की लहर नहीं दौड़ती ?

जिस प्रभुनाम के अद्भुत प्रभाव से मृत्युकाल में “हराम” कहनेवाले यवनने प्रभुका धाम पा लिया, जिस रामनाम का उल्टा “मरा-मरा” का जाप करके मुनिराज ब्रह्मर्षि वाल्मीकि बन गए तथा परात्पर ब्रह्म रामनाम के अनुपम प्रभाव से भक्तशिरोमणि प्रह्लाद विपत्तियों के समूहों से छूट गए, हा ! ऐसे परम सत्य प्रभुनाम के प्रति विश्वासभाव तथा अटल श्रद्धाभाव उदय नहीं होते ? अपने भाव से ही प्राणी सत् और अमत्, सुख और दुःख, लाभ और हानि-यहाँ तक कि जीवन और मरण में भी रमण करता है। उच्च पवित्र भाव ही विजय दिलाता है और अपवित्र नीच भाव ही जीवन का पतन कराता है। भाव की शुद्धता एवं उत्कृष्टता छोटी क्रिया में भी अपूर्व शक्ति का संचार कर देती है। लोकमें भी यह देखा जाता है कि भाव हारे हुए को भी जिता देता है और बड़े-बड़े विद्वान् पराक्रमी और वीर भी भावकी प्रभा से हीन होने के कारण मोह, कायरता और दीनता का जीवन जीते हैं, जो उन्हें शोभा नहीं देता और लोक में उनकी निन्दा की जाती है।

भगवान् की क्रिया लीला कही जाती है। मानवमात्र को शिक्षा देने के लिए ही वे लीला करते हैं जिसे सामान्य बुद्धि के मनुष्य नहीं समझ पाते हैं। साधना में भावना सर्वोपरि वस्तु है, यही सिद्ध करने के लिए भगवान् की एक

(१४६)

लीला प्रस्तुत करना चाहता हूँ । साधना एक प्रकार की क्रिया ही है जो भगवत्प्राप्तिके उद्देश्य से की जाती है । साधना या क्रिया में दिव्यशक्ति का स्रोत साधक की भावना में ही रहती है, यही भगवान् की नीची लिखी लीला से स्पष्ट है :—

वशिष्ठसंहिता तथा अद्भुत रामायण में भी ऐसी चर्चा आयी है कि एकवार भगवान् श्रीराम कर्म से पीछे हट गए हैं । उन्हें कोई कर्म करना अच्छा नहीं लगता है । मोहग्रसित मनुष्य की तरह उनमें शिथिलता और अकर्मण्यता के अशोभनीय भाव प्रवेश कर गए हैं । उन्हें संसार नश्वर, असत्, दुःख का धाम प्रतीत होता है । गुरुदेव श्रीवशिष्ठजीने श्रीरामके अशोभनीय, अनुचितभाव को लख लिया । उस अनुचित भाव को मिटाकर आदर्श पवित्र अनासक्तिभाव की प्रतिस्थापना करने हेतु आचार्यप्रवरने कहा—“ हे राम ! आगे आनेवाले युग में भगवान् श्रीकृष्ण माधुर्य, प्रेम, पूर्णता और अनासक्ति आदर्श भावना के अवतार रूप प्रकट होंगे । संसार उनके अनासक्ति भाव से प्रभावित होगा और अनासक्त कर्मयोग की प्रतिस्थापना होगी । वे अपने शिष्य अर्जुनको संसार में रहने का ऐसा ही भाव प्रदान करेंगे जिसके प्रभाव से सर्वत्र शुभ और मंगल की सृष्टि होगी, मधुरता और प्रेमकी वृष्टि होगी । मनुष्यको कर्मका त्याग न करना चाहिए प्रत्युत कर्मकी फलेच्छाका ही त्याग करना चाहिए । वास्तव में कर्मों का अनुष्ठान मनुष्य को बंधन में नहीं डालता है । फल की इच्छा और आसक्ति से ही उसका बंधन होता है । इस श्रीकृष्ण भगवान् की अनासक्ति भावना की प्रशंसा सारा संसार ही करेगा । ”

श्रीरामने आश्चर्य और कौतूहल से प्रश्न किया—

“गुरुदेव ! वह युग कब आयेगा ? अर्जुन कौन-सा भाव लेकर संसार में आयेगा ? भगवान् श्रीकृष्ण किस परिस्थिति में अर्जुन के हृदय में अनासक्ति के सुन्दरभाव भरेगे ? क्या अर्जुन जैसे यशस्वी, वीर, पराक्रमी में भी मोह के भाव आ जायेंगे ? भलीभाँति समझाकर मुझे कहिए । क्या आदर्श कर्मयोगी मैं नहीं बन सकता ? सुन्दर, मंगलकारी परमोचित भावनाओं की जागृति तो गुरुजन ही किया करते हैं ।

गुरुवर वशिष्ठजीने यथोचित रूप में श्रीरामको समझाते हुए कहा--“हे राम ! तुम्हें सुन्दर उपयुक्त भावनाओं से सुमज्जित होकर इस जगत् में एक परमादर्श मनुष्य बनना है, यही मेरी हार्दिक तीव्र जिज्ञासा है । जन्म और मृत्यु से संसार गतिवान रहता है । जो जन्मता है, वह कुछ समय ठहर कर अवश्य मर जाता है । ब्रह्मा सृष्टि करते हैं और यमराज कालरूप होकर संहार करते हैं । दोनों ही अपने काम में दक्ष हैं और आदर्श भी हैं । आदर्श दक्षता निष्पक्षता से ही आती है । ऋषियोंने कहा है कि निष्पक्षता से कर्म करने की योग्यता अनासक्ति की भावना से ही आती है । यदि ब्रह्मा को अपनी सृष्टि का मोह हो जाय तो संहार न होने दे और कालको अपने कर्म में ही मोह या आसक्ति हो जाय तो वह भी किसी को जीने न दे । यह जगत् भगवान् की लीला है । उसी प्रभुकी प्रेरणा से सब कार्य होते हैं । जिससे जैसा करवाना होता है, वैसी ही भावना, बुद्धि परमेश्वर ही प्रदान करते हैं । ब्रह्मा और कालको अनासक्तिसे कार्य करने की प्रेरणा उसी सर्वनियंता सर्वेश्वर से प्राप्त होती है ।

ब्रह्मा और काल अपने-अपने कर्ममें निरत हैं। भगवान् की सृष्टि-लीला कोई नहीं समझ पाता है। काल-क्रमसे जनसंख्यामें वृद्धि होती है। जैसे बिना सफाई किए भवन दुर्गन्धपूर्ण और असुन्दर हो जाता है, वैसे ही भगवान् की लीलामें संसार में पाप तथा अत्याचार भी बढ़ते हैं। काल पापों, तापों, विकारों तथा पीड़ाओं को संहार करने के लिए छोड़ देता है, लेकिन फिर भी भूमि का भार हल्का नहीं हो पाता है। ऐसे समय में देवगण, नेता, राजा और न्यायप्रिय व्यक्तिगण काल का काम करते हैं, फिर भी दुर्व्यवहार के विस्तार से पृथ्वी पर त्राहि-त्राहि मची रहती है। संतों को दुष्ट, दुर्जन भाँति-भाँति से कष्ट देते रहते हैं। सर्वदर्शी करुणासिन्धु परमेश्वर से नहीं रहा जाता है। पृथ्वी का भार हल्का करने के लिए तथा संतजनों की रक्षा करने के उद्देश्य से भगवान् दो शरीरों में आते हैं। एक में वे कृष्ण बनें और दूसरे में अर्जुन। अपने ही रूपों में अलग अलग भाव भरना भगवान् ही जानते हैं। सामान्य जीव में जो मोह का भाव रहता है, वही मोहभाव से ग्रसित अर्जुन है।

अर्जुन ने गाँडीव छोड़ दिया। कायरता से दीन-हीन जीवन व्यतीत करने की अशोभनीय भावना उसमें उत्पन्न हो गई। अपने ही ज्ञान से वह पथ-भ्रष्ट होने लगा। धर्मपालन को अधर्म मानकर मानवता से पीछे हटने लगा। बढ़ते हुए दुराचार की ओर से उदासीन रहने में उसने अपने आपको साधु समझा और युद्ध करने के कर्त्तव्य को छोड़ देना ही उचित समझा।

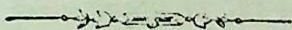
मनुष्य जब अपने जन्म, जीवन और कर्त्तव्यों में दिलचस्पी नहीं लेता तो उसे पथ-भ्रष्ट समझ लेना चाहिए। ऐसे

(१४६)

समय में गुरुजन, विद्वान्, संतजन ही पथ-प्रदर्शन करते हैं। भगवान् श्रीकृष्णने अपने नारायणभाव से नररूप अर्जुन को प्रेरणा और प्रकाश दिया। अर्जुन की भावना बदल गई। उसका अहंकार और मोह नष्ट हो गया। सर्वसमर्थ भगवान् को समझ गया। उस प्रभु की शरण प्राप्त कर वह निश्चिन्त हो गया। भगवान् का काम इतना ही है कि वह भक्त को कर्म का बोध करा दे, उसमें टिका दे और उत्थान से निकाल दे। मनुष्य कहीं अटका न रहे तो यही अनासक्ति का सुन्दर भाव है और अटक जाये तो आसक्ति, मोह और अज्ञान का ही भाव समझना चाहिए। अनासक्तिभाव और भागवदशरणागति भाव एक ही है। यही सर्वोपरि भाव अर्जुन में भर दिया गया।”

गुरु वशिष्ठने कहा—राम ! तुम अर्जुन के समान अनासक्त भाव से कर्म के पथ पर चलो। ब्रह्म और काल की गृहस्यमयी कथा के परम भाव को जानकर जगत् में व्यवस्थित और ब्रह्ममय जीवन जीनेवाले में कर्मशक्ति का स्रोत उमड़ता रहता है।”

इस प्रकार भावना बहुत बड़ी वस्तु है। साधक को भगवान् की भावना में ही रमण करते हुए साधना करना चाहिए। साधना की सफलता भावना पर ही है। भावना ही भगवान् का रूप है। रामनाम सर्वश्रेष्ठ है, सर्वोपरि है, ऐसी भावना अवश्य बनानी चाहिए। भावना का पोषक तत्त्व विश्वास है।



✽ रामनामकी महत्ता ✽

इस प्रकार पूर्व ही भगवान् श्रीराम के गुणों की चर्चा की गई है और रामभक्ति का रहस्य भी गोस्वामी-तुलसीदासजी के दृष्टिकोण के अनुसार बताया जा चुका है। यह सदा सच है कि रामनाम की महत्ता बहुत ही कम लोग जानते हैं क्योंकि यह बुद्धि का विषय नहीं है।

रामनामकी महत्ता के विषय में जो भी कुछ कहा जाय, वह सब अपूर्ण ही है और अपूर्ण ही होगा। रामनाम की महत्ता इतनी विशाल है कि कोई इसको पूर्णतः वर्णन करने का दावा नहीं कर सकता। जितना बड़ा यह विस्तृत आकाश है, उससे भी बड़ी इस रामनाम की महिमा है। रामनाम की महत्ता को समझाने के लिए संतोंने एक ही शब्द में इसकी विशालता बतला दी है। संतलोग कहते हैं कि “संसार के सातों बड़े-बड़े समुद्रों को यदि दावात बना दिया जाय और किसी एक ऊँचे पर्वत को कलम बनाकर यदि गणेशजी-ऐसे तेज लिखनेवाले व्यक्ति द्वारा भी रामनामकी महिमा लिखवायी जाय तो भी वे रामनाम की महिमा पूर्ण रूपा से कभी नहीं लिख सकते।” कहने का आशय यह है कि रामनाम की महिमा इतनी विशाल है कि बड़े-बड़े ऋषि-महर्षि भी इसका वर्णन पूर्णतया नहीं कर सकते। सबने इसका यथार्थ वर्णन करने में असमर्थता व्यक्त की है।

रामनाम की महिमा पर संत तुलसीदास जी का ही बहुत थोड़ा विचार प्रस्तुत कर रहा हूँ जो सर्वमान्य होगा। इस रामनाम में केवल दो अक्षर हैं—रकार और मकार। इन दो अक्षरों की महिमा अनन्त है, अपार है और अगाध है। संत तुलसीदासजी कहते हैं :—

(१५१)

“ आखर मधुर मनोहर दोऊ ।
वरन बिलोचन जनजिय जोऊ ॥
सुभिरत सुलभ सुखद सब काहू ।
लोक लाहु परलोक निगहू ॥ ”

रामनाम के ये दो अक्षर उच्चारण में अत्यन्त मधुर तथा देखने में सुन्दरातिसुन्दर हैं । इनका स्मरण सबको सुलभ और सुखदायक है । ये लोक और परलोक दोनोंका निर्वाह करने वाले हैं । इस रामनाम की महिमाको शिवजी, गणेशजी तथा आदिकवि वाल्मीकिमुनि ही जानते हैं जिन्हें इसका साक्षात् अनुभव है । यह रामनाम भगवान् के हजारों नामके बराबर है । संत तुलसीदासजी के शब्दों में देखिए :—

“महामंत्र जोई जपत महेश्व । कासीं मुकुति हेतु उपदेख ॥
महिमा जासु जान गनराऊ । प्रथम पूजिअत नाम प्रभाऊ ॥
जान आदि कवि नाम प्रतापू । भयउ सुद्ध करि उन्टाजापू ॥
सहसनाम सम सुनि सिव बानी । जपि जेई पिय संग भवानी ॥”

रामनामके जपका ही यह प्रभाव था कि शिवजी निर्भय होकर हलाहल जहर पी गए—

“नाम प्रभाउ जान सिव नीको ।
कालकूट फलु दीन्ह अमीको ॥”

रामनाम जप से योगी मुनि जागते हैं । उन्हें सांसारिक जंजालों से वैराग्य हो जाता है और रामनाम का स्मरण उन्हें ब्रह्मसुख का अनुभव कराता है—

(१५२)

“नाम जीहँ जपि जानहि जोगी ।

विरति विरंचि प्रपंच विधोगी ॥

ब्रह्मुखहि अनुभवहि अनूपा ।

अकथ अनामय नाम न रूपा ॥”

जो साधक या भक्त गूढ़ भगवत् तत्त्वको जानना चाहते हैं, वे भी केवल रामनामके जप से उसे जानजाते हैं और इसके अलावे लययोग का भी प्राप्त करते हैं तथा अनन्त सिद्धियों को प्राप्ति कर लेते हैं। लयलोग का मतलब ब्रह्मलीन है। रामनाम जापकको ब्रह्मलीन बना देता है। जो दुःखी प्राणी रामनाम जपते हैं, उनका सारा दुःख क्लेश तथा संकट समाप्त हो जाते हैं और वे परमानन्दरसामृत का अनुभव करते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं :—

“जाना चाहहि गूढ़ गति जेऊ ।

नामजीहँ जपि जानहि तेऊ ॥

साधक नाम जपहि लय लाएँ ।

होहि सिद्ध अनिमादिक पाएँ ॥

जपहि नाम जन आरत भारी ।

मिटहि कुसंकट होहि सुखारी ॥”

यह रामनाम अगुण सगुण दोनों ब्रह्म का बोध कराने वाला है अतः दोनों ब्रह्म के रूप इस रामनाम के अधीन ही बताए जाते हैं। ब्रह्मके रूप का ध्यान किए बिना ही रामनामज जप से अनन्त सुख प्राप्त होते हैं। रामनाम जैसा स्वतंत्र साधन कोई नहीं है। तुलसीदासजी कहते हैं :—

(१५३)

“कलियुग जोग न जग्य न ग्याना ।

एक अधार राम गुन गाना ॥”

तुलसीदासजी ने भगवान् राम से बढ़कर रामनाम को सिद्ध किया है । देखिए:—

“राम एक तापस तिय तारी ।

नाम कोटि खल कुमति सुधारी ॥”

रामनाम का उत्कर्ष उन्होंने अपने मन से नहीं गाया है, बल्कि वाल्मीकि रामायण, श्रीमद्भागवत, श्रीमद्भगवद्-गीता तथा नाना पुराण निगमागम के आधार पर ही गाया है ।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने जो कुछ भी कहा है, वह नाना पुराण और वेदों के आधार पर ही कहा है । जैसे रामनाम की महत्ता अथर्ववेद में देखिए:—

“यश्चांडालोऽपि रामेति वाचं वदेत् ।

तेन सह संवदेत् संवसेत् संभुं जीयात् ॥”

अर्थात् जो चांडाल भी रामनाम कहता है, उसके साथ बोलना, बैठना और भोजन करना चाहिए ।

रामनाम की महत्ता का वर्णन कहाँ तक किया जाय ? अर्थात् इसकी महत्ता वर्णन से परे है । इस कराल कलिकाल में रामनाम जप एक कल्पवृक्ष है जिसके द्वारा सभी संकट मिट जाते हैं और मनोवांछित फल उपलब्ध होते हैं । इस कलियुग में न तो सुकर्म किया जा सकता है, न भक्ति की जा सकती है और न सम्यक् ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है, लेकिन रामनाम की स्वतंत्र साधना अवश्य हो सकती है ।

(१५४)

कोई पापी, दुराचरी भी रामनाम लेकर महात्मा बन सकता है, यह गूढ़ बात है। सामान्य मनुष्य को रामनाम की महत्ता पर विश्वास नहीं होता है, यह सच है। दैनिक कर्तव्यों के साथ-साथ रामनाम जप का अभ्यास किया जाय, तभी इस रामनाम की महत्ता का अनुभव होगा।

मारे ऋषियोने, संतोंने तथा भक्तोंने रामनाम की चर्चा में अपने हृदय को खोलकर प्रस्तुत कर दिया है, लेकिन रामनाम की महत्ता को इदमित्थं कभी नहीं कहा है। पूज्यपाद गोस्वामी तुलसीदासजी का सम्पूर्ण साहित्य रामनाम की महिमा से चमक रहा है और दमक रहा है, लेकिन "रामु न सकहि नाम गुन गाई" लिखकर रामनाम की महिमा अगाध बतायी है। तात्पर्य यह है कि रामनाम की पूर्ण महिमा नहीं बतायी जा सकती है। ऐसा नहीं लिखने से नामापराध होता। नामापराध से भक्त को सदा वचना चाहिए।

रामनाम समस्त जीवन और जगत् का सार है। समस्त धर्मशास्त्रों का यह मर्म है। हाँ यह रामनाम भगवद्भक्ति का अक्षय निर्झर है, धर्मवाग का सनातन बीज है, मुक्ति तक पहुँचाने का पुष्पक विमान है, त्रिविध तापों का शोषक है और सभी अविनाशी सुखों का पोषक है। रामनाम सनातन और पुरातन होकर भी बिल्कुल नवीन से नवीन और रंगीन से रंगीन है। सारे संतोंने इसे ऐसा निराला अमृत का फल घोषित किया है जो सदैव अनूठा का अनूठा रहता है और कभी झूठा नहीं सिद्ध हो सकता है।

यह अवश्य कह सकता हूँ कि आज की बिगड़ी स्थिति को सुधारने की शक्ति केवल रामनाम में है। हम सत्य को

असत्य और असत्य को सत्य सिद्ध करने में अपने को प्रबुद्ध तथा प्रवीण समझते हैं। आज की शिक्षा को तो भोग का तबलची बना दिया गया है। एक आज के शिक्षित व्यक्ति का उद्गार देखिए:—

“बी० ए० हुए, नौकर हुए, पेंशन मिली, फिर मर गए”
इस शिक्षा से जीवित रहे तो नौकर होकर ही और मरे तो पेंशन लेकर ही। आजकी ऐसी अंधी शिक्षा को आँख देने वाला रामनाम ही एकमात्र सिद्ध हो सकता है। जब तक हम रामनाम को रोम-रोम में रमायेंगे नहीं, तब तक कानून कागज पर कराहते ही रह जायेंगे और विकास की योजनाएँ रोती ही रह जायेंगी। कर्मठ कार्यकर्त्ता आकाश-पाताल एक करते ही रह जायेंगे, किन्तु सुख-जांति का दर्शन दुर्लभ ही रह जायगा और हाहाकार की बीमारी बढ़ती ही चली जायगी।

सारी बीमारियों की दवा है रामनाम और सभी समस्याओं का समाधान करने वाला एकमात्र है रामनाम। रामनाम ही हमें स्वार्थ त्याग करने का और विश्वप्रेम का पाठ पढ़ानेवाला सिद्ध हो सकता है। यही “वसुधैव कुटुम्बकम्” की मधुर तथा सुगंधित भव्य भावना सृजन करनेवाला अमोघ महामंत्र सर्वत्र घोषित किया गया है। जन-जन में प्यार, प्रेम पवित्र तथा उदात्त निर्मल विचारों का प्याला पिलानेवाला यही सिद्ध किया जा सकता है। केवल देश के कानून से कोई रत्नाकर डाकू वाल्मीकि नहीं बना है और न बन सकता है।

संसार परिवर्तनशील है और सदा परिवर्तनशील रहेगा ही। अनेकों प्रकार के आन्दोलन आते हैं और मिटते हैं।

भिन्न-भिन्न शासकों का उदय होता है और अस्त होता है, लेकिन इन सबों से रामनाम की महत्ता पर कोई आंच नहीं आती, न आ सकती है और न कभी आएगी ही ।

आज भी मानव हृदय पर जितना प्रभाव रामनाम का है, उतना प्रभाव अन्य का जैसे शासन, शिक्षा का नहीं ही देखा जाता है । हम जो पूजा-पाठ करते हैं, संध्यावन्दन करते हैं, जहाँ-तहाँ अखंड नाम कीर्तन करते हैं, सत्संग करते हैं और मत्स्यनारायणव्रत कथा का आयोजन घर-घर में करते हैं, यह सब रामनाम का ही व्यापक रूप है अर्थात् रामनाम का सीमित रूप नहीं है ।

रामनाममें ही हमारा सारा जीवन है, यही हमारे सदाचार की आत्मा है। यही हमारा सर्वस्व है, इसे ठीक-ठोक कैसे बताया जाय ? यह जीवन का प्राण भी है और मरणकाल का सहारा भी है । हमारे जन्म काल में हमारी माता राम राम बोलकर ही हमें पैदा करती है और मरण के बाद भी स्वजनमंडली “रामनाम सत् है ” की नारा लगाती है । “सत्” शब्द का मतलब सत्ता से है अर्थात् रामनाम की सत्ता सदा ही रहेगा” यह अर्थ किया जा सकता है । यहाँ कहने का आशय यह है कि अपने जन्मकाल से ही हमें रामनाम का अवलम्बन मिल जाता है और मरण के बाद तक चलता ही रहता है । अपनी भारतीय संस्कृति का गूढ़ रहस्य इसी रामनाम में ही है, जिसे कोई-कोई ही समझ पावे है !

इस संसार के पहले भी रामनाम अवश्य था और जब यह संसार नहीं रहेगा तब भी रामनाम का अस्तित्व रहेगा ही, अतः रामनाम ही हमारा अपना है और रामनाम का ही

हम हैं, यही सच्चा ज्ञान है। रामनाम का अर्थ भी विशाल और व्यापक है। रामनाम में विश्वास करने का मतलब भगवान् की सत्ता में विश्वास करना है। भगवान् की सत्ता सदा है और रहेगा ही। इसे झूठा कोई कभी सिद्ध नहीं कर सकेगा। संक्षेप में मैं कहना यही चाहता हूँ कि रामनाम सारे ज्ञान, विज्ञान और सभी कलाओं की आत्मा है। रामनाम से शून्य ज्ञान अज्ञान है, विज्ञान सर्वनाशक और प्रलयकारी है एवं कलाओं की क्यारी विष की फुलवारी कहने योग्य है। सभी विद्याओं और कलाओं को रामनाम ही अपने मंगलमय प्रकाश से प्रकाशित करता है और उन्हें उपयोगी उपादेय बनाता है। यह भी स्पष्ट समझ लीजिए कि विज्ञान बुरी वस्तु नहीं है, इसका दुरुपयोग बुरा है। विज्ञान के दुरुपयोग का कारण रामनाम की सत्ता में विश्वास नहीं करना है। यह कहा जा सकता है कि विज्ञान मानव जीवन का पाँव है तो रामनाम आँख है। विज्ञान के बिना मानव जीवन लंगड़ा है तो रामनाम के बिना अंधा है। रामनाम ही जीवन का ज्ञान देता है तथा जीवन विताने का ढंग सिखाता है। अर्थात् रामनाम मानव जीवन का सच्चा पथप्रदर्शक है और आज का विज्ञान उसमें गति की वृद्धि करता है। इस प्रकार रामनाम की आवश्यकता अनिवार्य है क्योंकि जीवन की भीतरी और बाहरी दोनों आँखें यही रामनाम प्रदान करता है। यह कहना ज्यादा अच्छा होगा कि इस रामनाम के बिना मानव-जीवन अंधा ही नहीं, बल्कि पागलतापूर्ण है और अपने ही लिए खतरा नहीं है, बल्कि सारे जगत् के लिए खतरा है। क्योंकि एक व्यक्ति आदर्श, सर्वगुणसम्पन्न बनता है तो उसका असर जगत् के सारे प्राणियों पर पड़ता है।

(१५८)

आजकल के ऋषियों का कहना है कि रामनाम आजकल की राजनीति का भी सच्चा पथप्रदर्शक सिद्ध हो सकता है। राजनीतिज्ञों के मूले हृदय को स्वच्छ करने वाला यह रामनाम ही हो सकता है। रामनाम से शून्य अंधी राजनीति क्या-क्या गुन खिला सकती है, यह तो आज अमेरिका और रूस के पैतरे ही दिखला रहे हैं और सज्जन व्यक्ति इसे ठीक-ठीक समझ सकते हैं। आज की राजनीति क्या सारे संसार में तबाही नहीं मचा रही है? ऐसा इसीलिए है कि इसे रामनाम दिशानिर्देशक यत्र नहीं है और न रामनाम के कारखाने की गद्दी हुई मशीन ही है। यदि अपना और संसार का सच्चा कल्याण चाहते हैं तो अपने सारे ज्ञान और विज्ञान के साथ-साथ रामनाम का प्रचार करें और इसका कीर्तन करें।

रामनाम के विद्यालयों, महाविद्यालयों, तथा विश्वविद्यालयों का अभाव हमारे परम पावन भारत देश में नहीं है। त्रिकालदर्शी महर्षियों जैसे वाल्मीकि वेदव्यास ने दर्शनाचार्यों ने जैसे आद्यशंकराचार्य, रामानुजाचार्य ने, भिन्न-भिन्न संतों ने जैसे ज्ञानदेव, नामदेव, तुकाराम कबीर, तुलसी, सूर आदि ने भिन्न-भिन्न विद्यालय खोल दिये हैं। आप किसी भी विश्वविद्यालय में नामांकन करा सकते हैं और अपना लोक-परलोक सुधार सकते हैं। यदि इन विश्वविद्यालयों में जाकर रामनाम की दीक्षा लेते हैं तो आप मानव जीवन के उन्नत शिखर से लुढ़ककर चकनाचूर हो जायेंगे, आपकी हड्डियाँ और पसलियाँ चौरासी लाख योनियों की चक्कियों में पिस जायेंगी और भोगासक्ति की नरकाग्नि में आपको सदा जलते ही रहना पड़ेगा।

रामनाम के विशेषज्ञाता हनुमान जो राम जी की भरी

संभा में अपने वक्षस्थल को विदीर्ण करके यही सुन्दर शिक्षा दे रहे हैं कि यदि हृदय में रामनाम नहीं है और भगवान् राम नहीं विराजते हैं तो न तो व्यक्ति का कल्याण हो सकता है और न समाज तथा जगत् का कल्याण हो सकता है। रामनाम से शून्य हृदय सच्चा हृदय नहीं कहा जा सकता है, वह तो सारे विकारों का अड्डा कहा जा सकता है।

यह उल्लेख करने योग्य है कि विश्वबंध गांधीजी के हृदय में जब रामनाम का सूर्योदय हुआ तो उन्होंने राजनीति के मंदिर में भी रामनाम की प्रतिस्थापना की और यही कारण है कि आज भारतीय राजनीति स्फटिक की तरह उज्ज्वल है, गंगाजल की तरह पवित्र है और सम्पूर्ण संसार के लिए तरन तारन बन गई है।

गांधीजी ने रामनाम की साधना की और उनके मनमें रामनाम रम गया। यह बिल्कुल सच है कि रामनाम का अवलम्बना लिये बिना मानवता के गुण स्थायी और सच्चे कल्याणकारी हो ही नहीं सकते। बिना रामनाम के अन्तःकरण की पूर्ण शुद्धि नहीं हो सकती है और परम सत्य का अनुभव प्राप्त नहीं किया जा सकता है। रामनाम सारे युग का परम धर्म है। गांधीजी ने रामनाम के द्वारा अपना कल्याण किया, अपने देश का कल्याण किया और मानवमात्र का कल्याण किया। रामनाम से बढ़कर कल्याणकारी कुछ भी नहीं है। इसकी महिमा अपने आप में अगाध और असीम है। इसकी महिमा वाल्मीकि तथा तुलसीदास ने गायी लेकिन बढ़ायी नहीं। इसकी महिमा गानेवाला अपना ही कल्याण नहीं करता, बल्कि सारे समाज तथा जगत् का कल्याण करता है।

‘रामनाम’ विषय का प्रोफेसर वाल्मीकि, तुलसीदास, शिव, हनुमान आदि अनेक हुए हैं। हमारे परम पावन भारत देश में रामनाम के शिक्षक, व्याख्याता, प्राध्यापक तथा प्रोफेसर भरे पड़े हैं जिनसे रामनाम की समुचित शिक्षा पायी जा सकती है। सूरदास, कबीरदास, मीरा आदि सभी संतोंने रामनाम का गुण जोवन भर गाया और अपने जीवन को धन्य बनाया। सचमुच में कलियुग के सारे विकारों और तापों को मिटाने वाला रामनाम ही है। अयोध्या के एक प्रसिद्ध संत श्री युगलानन्द शरणजी महाराज ने ठीक ही कहा है :—

“रामनाम में वेद संहिता पुराण ज्ञान ध्यान समाधि हैं।

रामनाम में मुक्ति भुक्ति भक्ति योग यज्ञ सब साधन हैं॥”

रामनाम की चर्चा का अगाध सागर भारतीय धर्मशास्त्रों में लहराता नजर आता है। इसके अर्थ अनन्त्र रूपों में हैं। बड़े-बड़े संतोंने रामनाम पर बड़ी-बड़ी पुस्तकें लिखी हैं। मेरे पास समय भी बहुत कम है। बहुत बड़ी पुस्तक में प्रकाशन-व्यय भी बहुत होने का भय है। अतः चाहकर भी मैं अत्यन्त संक्षेप में विवश होकर लिख रहा हूँ। बेचारे प्रेसवाले ने भी संक्षेप करने के लिए अनुरोध किया है

राम का मतलब सर्वत्र रमण करने वाला एक परमेश्वर है और नाम का मतलब उस पर विचार करना है, अतः “राम नाम” का मानव “परमेश्वर का विचार” है। वेद, पुराण, शास्त्र आदि में रामनाम के विचार हैं, अतः उन्हें रामनामस्वरूप भी कहना उचित है। ईश्वर सम्बन्धी विचार सनातन, पुरातन, शाश्वत और नित्य है। ईश्वर पहले भी था, अभी भी है और भविष्य में भी निरन्तर रहेगा ही।

(१६१)

कुछ संतों ने लिखा है कि रामनाम ईश्वर का विचार है। यह शुद्ध विचार है और शुद्ध प्रकाश है। प्रभु की कृपा से ही मन परमेश्वर सम्बन्धी विचार करता है। परमेश्वर का विचार करते ही मन की प्राकृतिक स्थिति बदलकर अलौकिक बन जाती है। हाँ, कभी-कभी स्वजन की मृत्यु होने पर यह मन परमेश्वर सम्बन्धी विचार करने लगता है अर्थात् रामनाम के लिए वह आमुख होता है।

स्वजनवियोग के द्वारा परम कृपालु भगवान् मानों हमें यह ज्ञान देते हैं कि “तुमने जिससे प्रेम किया था, जिस शरीर को अमर समझ रहा था, वह तो थोड़े काल के लिए ही था।” किसी का शरीर सदा एक सा नहीं रह सकता है। उस शरीर में अनेकों रोग होते हैं और एक दिन नाश भी हो जाता है। अनर्थ और व्यर्थ में मनुष्य का जीवन बर्बाद होता है। झूठ बोलने, किसी की निन्दा करने, किसी को कष्ट देने में, खाने-पीने में भिन्न-भिन्न भोग के भोगने में जो जीवन व्यतीत होता है, वह अनर्थ में ही जीवन की बर्बादी है। दान करने में, किसी को सुख पहुँचाने में, धर्मशाला, स्कूल बनवाने में तथा अन्य शुभ कर्म करने में जो जीवन व्यतीत होता है लेकिन भगवान् में सच्चा विश्वास नहीं होता, श्रद्धा की अग्नि हृदय में नहीं सुलगती और भगवान् का भजन, नाम अच्छा नहीं लगता है तो यह व्यर्थ जीवन ही संतों के विचार के अनुसार है। शुभकर्मों से देवयोनि तथा स्वर्ग की प्राप्ति की जा सकती है जिसे भक्तिशास्त्र में तुच्छ दृष्टि से ही देखा जाता है। भोग की दृष्टि से देवयोनि सर्वश्रेष्ठ है। इसमें भोग की सभी सामग्रियाँ प्राप्त रहती हैं। खानेपीने, आराम करने की सभी सुविधाएँ प्राप्त रहती हैं। किसी प्रकार का रोग, शोक नहीं सताता है।

(१६२)

लेकिन फिर भी विकास की दृष्टि से और भगवद्भक्ति को अगाधसुधारस पान करने की दृष्टि से यह देवयोनि निन्दनीय और उपेक्षणीय है। कोई देवता चाहकर भी भगवान् नहीं बन सकता है। लेकिन नर अवश्य ही अपने पुरुषार्थों द्वारा तथा उच्च कोटि की साधना द्वारा नारायण बन सकता है। शुभकर्मों के अनुष्ठान द्वारा कोई देव के शरीर को प्राप्त कर सकता है, लेकिन मनुष्यतन की प्राप्ति के लिए कोई शुभकर्म का अनुष्ठान पर्याप्त नहीं है। यह मनुष्यतन तो कृपालु भगवान् ही कभी-कभी कृपावश देते हैं। तुलसीदासजी ने सत्य ही लिखा है—

“कबहुँक करि करुना नर देहि । देत ईश विनु हेतु सने ही ।”

रामनाम सभी साधनों का सहायक तथा विकासकर्ता भी है। सभी साधन अनुपान हैं और रामनाम असली औषधि है। इस औषधिका पूर्ण रहस्य सत्सग द्वारा ही जाना जाता है। सभी के मत से रामनाम साधन-सम्राट है। सारे साधनों का विकास इसी रामनाम से होता है। इस रामनाम की साधना में आज तक किसी ने अनुतीर्ण नहीं प्राप्त की है। इस साधना में सबके सब पास किए हैं, फेल कोई नहीं हुआ है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि इस रामनाम साधना में सबको अधिकारी समझा जाता है। ज्ञानी, अज्ञानी, पापी, पुण्यात्मा, स्त्री, पुरुष, बच्चा, बुढ़ा, जवान, सबको एक समान अधिकार है। इसमें जातिपाँति धर्म-अधर्म की समस्या कभी प्रस्तुत नहीं होती है। दूसरे शब्दों में रामनाम जैसा स्वतंत्र साधन अन्य कोई साधन नहीं है। कर्मकांड और ज्ञानकांड स्वतंत्र नहीं हैं और इनमें सबको अधिकार भी प्राप्त नहीं है। कर्मकाण्ड में विधि-

विधान का पालन करना अनिवार्य होता है। दूसरी बात यह है कि कर्मकांड की साधना में देहाभिमान सदा बना रहता है और इसमें विषमभाव कभी मिट नहीं पाते हैं। पुनः कर्मकांड की साधना में धन की भी आवश्यकता होती है और शास्त्रीय विधि को जानना पड़ता है। कर्मकाण्ड की साधना आत्मज्ञान के अभाव में ही होती है। आत्मज्ञान होते ही कर्म की महत्ता जल जाती है। आत्मज्ञान होने के लिए जगत् के प्रति अनासक्ति, वैराग्य आदि का जागृत होना अति आवश्यक है। बिना विराग के ज्ञान कहाँ ? अतः आत्मज्ञान की साधना सबके लिए नहीं है। भगवान् के प्रति प्रेम जाग जाने पर आत्मज्ञान की महत्ता भी समाप्त हो जाती है। कर्म ज्ञान सबकी सिद्धि भगवान् के प्रेम में ही है। रामनाम का सीधे सम्बंध भगवत् प्रेम से है, अतः यह सर्वश्रेष्ठ साधन है। रामनाम की शक्ति भगवान् से भी बढ़कर बतायी जाती है। देखिए, तुलसीदासजी कहते हैं—

‘अगुन सगुन दुई ब्रह्म सरूपा ।

अकथ अगाव अनादि अनूपा ॥

मोरें मत बड़ नाम दुहुँतें ।

किए जेहि जुग निज बस निज बूतें ॥’

संस्कृत व्याकरण के अनुसार ‘राम’ शब्द का अर्थ प्रस्तुत करना उचित समझता हूँ। ‘रम्’ धातु से ‘राम’ बना है। जड़ चेतन सब में जो व्याप्त है, उसी का नाम ‘राम’ है। तुलसीदासजीने भी लिखा है :—

‘जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि’

‘राम’ शब्द निर्गुण निराकार भगवान् और सगुण साकार भगवान् दशरथनन्दन कौशल्या के भाग्य को धन्य करने वाले अयोध्यावासी श्रीराम का भी अवश्य परिचायक है। रामनाम का दिव्य प्रकाश निर्गुण ब्रह्म को भी चमकाता है और सगुण साकार ब्रह्म राम को भी है। तुलसीदासजी कहते हैं :-

‘अगुन सगुन बीच नाम सुखा ।

उभयप्रबोधक चतुर दुभाखा ॥’

रमन्ति योगिनः यस्मिन् इति रामः यह निर्गुण राम की व्याख्या है। यही रामनाम सन्त कबीरदासजीका आधार था। इसी रामनाम की सहिमा कबीरदासजीने गायी :-

‘जेहि घट प्रीति न प्रेमरस, पुनि रसना नहिं राम ।

ते नर इस संसार में उपजि भये बेकाम ॥’

रामनाम के अवलम्बन से ही मायाकी रस्सी कट जाती है। इसलिए सबोंने रामनाम का सहारा लेने के लिए दिव्य सन्देश दिया है। सचमुच में रामनाम भगवान् के सभी नामों की आत्मा है और सब का परम प्रकाशक भी है। महारामायण में ऐसी ही चर्चा मिलती है, देखिए :-

‘नारायणादिनामानि कीर्त्तितानि बहून्यपि ।

आत्मा तेषां च सर्वेषां रामनाम प्रकाशकः ॥’

इतना ही नहीं, विष्णु, नारायण आदि असंख्य नाम रामनाम से ही उत्पन्न हुए हैं, इसकी चर्चा पद्मपुराण में है, देखिए :-

‘विष्णु नारायणादि नामानि चामितान्यपि ।
तानि सर्वानि देवर्षे ज्ञातानि रामनामतः ॥’

आदिपुराण में भगवान् कृष्ण अपने भक्त अर्जुनको राम-नाम जपने हेतु ही प्रेरणा दे रहे हैं। भगवान् कृष्ण स्वयं कहते हैं कि मैं भी रामनाम निरंतर स्मरण करता हूँ, एक क्षण भी रामनाम को नहीं भूलता हूँ, यह सत्य, सत्य कहता हूँ। अतः हे अर्जुन ! तुम भी दृढ़ चित्त से रामनाम भजो। जो रामनाम लेते हैं, वे मेरे अत्यन्त प्यारे हैं। आदिपुराण के श्लोक ही देखिए :—

‘रामनाम सदा प्रेम्ना संस्मरामि जगद्गुरुम् ।
क्षणं न विस्मृतिं याति सत्यं सत्यं वचो मम ॥
तस्मात् रामनामानि कौन्तेय भजस्व दृढचेतसा ।
रामनाम सदा युक्तास्ते मे प्रियतमाः सदा ॥’

महाशंभु संहिता में रामनाम की महिमा के प्रसंग में लिखा है कि रामनाम के ही प्रभाव से ब्रह्मा सृष्टि करते हैं, विष्णु विश्वका पालन करते हैं और शिव संहार करते हैं, देखिए :—

‘रामनाम प्रभावेण स्वयम्भूः सृजते जगत् ।
विभर्ति सकलं विष्णुः शिवः संहरते पुनः ॥’

महारामायण में यह भी स्पष्ट लिखा है कि मोक्षदायक ‘ॐ’ की उत्पत्ति भी रामनाम से ही हुई है, देखिए :—

‘रामनाम्नः समुत्पन्नः प्रणवो ॐकार मोक्षदायकः ।’

जैमिनी पुराण में रामनाम की महत्ता के प्रसंग में

लिखा है कि सभी देवता रामनाम का ही जप करते हैं और रामनाम के सबसे बड़े विशेषज्ञ शंकरजी हैं, देखिए :—

‘रामनाम परंब्रह्म सर्वदेव प्रपूजितम् ।

महेश एव जानाति न अन्यो जानाति वै मुने ।’

यह तो सर्वविदित है ही कि गणेशजी रामनाम के प्रभाव से ही देवताओं में सर्वप्रथम पूजित हुए। गणेशजी ‘गणेश पुराण’ में स्वयं कहते हैं कि ‘रामनाम की प्रभा मेरे हृदय में चमक रही है।’ श्लाक में देखिए :—

‘रामनाम प्रभा दिव्या राजते म हृदयस्थले ।’

शुकपुराण में लिखा है कि रामनाम के प्रभाव से शुकदेव जी ब्रह्मर्षियों में प्रधान हो गए, देखिए—

यत्प्रभावं समासाद्य शुको ब्रह्मर्षिसत्तमः ।

जपस्व तत् महामंत्रं रामनाम रसायनम् ।’

सारस्वत तन्त्र में लिखा है कि महामंत्र भी सात करोड़ हैं जो मनका चक्कर में डाल देते हैं। महामंगलकारी यह दो अक्षरों का ‘रामनाम ही एकमात्र परम और चरम महामंत्र है। देखिए :—

‘सप्तकोटिमहामन्त्राः चित्तविभ्रमकारिकाः ।

एक एव परो मंत्रः श्रीरामनामाक्षरद्वयम् ।’

वशिष्ठजीने भी रामनाम को सर्वप्रधान नाम मानकर ही महाराज दशरथजीकी प्रार्थना करने पर दशरथनन्दन का नाम ‘राम’ रखा था, देखिए :—

(६७)

‘इन्हके नाम अनेक अनूपा ।
मैं नृप कहऊँ स्वमति अनूपा ॥
जो आनन्दसिन्धु सुखरासी ।
सीकर तै त्रैलोक सुपासी ।
सो सुखधाम राम अस नामा ।
अखिल लोकदायक विश्रामा ॥’

सचमुच में रामनाम मधुरों में भी मधुर है और मंगलों का भी मंगल है। इसे वेदलतिका का सर्वोत्तम सर्वोपरि मधुर फल ही कहना चाहिए। एकबार भी रामनाम कहने वाला स्वयं ही नहीं तरता, बल्कि अनेकों को तार देनेवाला तरन तारन बन जाता है देखिए :—

‘धारक राम कहत जग जेउ । होत तरन तारन नर तेउ ॥’

सन्त चरणदासजीने लिखा है कि वेद रूपी वृक्षोंका फल है भगवद्भक्ति और उस भगवद्भक्तिका सुमधुररस है ‘रामनाम ।’ चरणदासजीके शब्दों में ही देखिए :—

‘चार वेद किए व्यास ने, अरथ विचारि विचार ।

तामें निकासी भक्ति ही, रामनाम तत्सार ॥’

रामनाम विचित्र ही वस्तु है। यह अपनी पहिचान जल्दी किसी को नहीं करवाता। यह अपनी महिमा अपने में छिपाकर रखना चाहता है। जो इसके पीछे रात दिन पड़ जाता है तब यह थोड़ा सा अपना परिचय देता है।

हमारे देश में इतना रामनाम की शरण में जाने वाले बहुत हैं। मुझे तो ऐसा लगता है कि यदि हमारे देश को

(१६८)

रामनाम का सहारा नहीं मिलता तो यह कब ही सर्वनाश के भँवर में डूब गया होता। यह रामनाम सारे मानसिक रोगों की अद्भुत दवा है। इसने अनन्त साधकों को परम विश्राम दिया है। गाँधीजीने तो रामनाम की साधना कर 'रामनाम' पुस्तक ही लिखी है जो सबको पढ़नी चाहिए। उनकी पुस्तक 'रामनाम' का थोड़ा उद्धरण दे देना उचित समझता हूँ :-

‘रामनाम’ कोई जादू का टोना नहीं है। रामनाम गणित का एक ऐसा सूत्र है जो थोड़े में बेहिसाब शक्ति और प्रकाश दे डालता है। इस राम नाम के जपने से ज्ञान बुद्धि, बल आदि अनेक गुण अवश्य ही आते हैं और नहीं चाहने पर भी उन सुखों तथा गुणों को अपनाते के लिए बाध्य किया जाता है जैसे यदि आप धान की खेती करते हैं और भूस्सा नहीं लेना चाहें तो भी भूस्सा आपको स्वीकार ही करना पड़ता है।”

हमारे राष्ट्रपिता महात्मागाँधी के आध्यात्मिक उत्तराधिकारी और भूदानयज्ञ के जन्म दाता सन्त विनोबाजी तो रामनाम-जल के ही आदर्श मीन कहे जा सकते हैं। विनोबाजी ने अपनी पुस्तक 'गीता प्रवचन' में रामनाम की महत्ता पर अनोखे ढंग से प्रकाश डाला है। देखिए :- ‘वच्चे कहते हैं कि रामनाम कहते ही भूत भागता है। एक दस वर्ष के वच्चे में रात को श्मशान में जाकर आने का उत्साह कहाँ से आता है? रामनाम से। रामनाम के नजदीक पापों को ठहरने की हिम्मत नहीं।’

गीता प्रवचन पेज ११६ में पुनः देखिए—‘रामनाम वेदों का सार है। रामनाम से मोक्ष विलकुल निश्चित है। मोक्ष पाने का यह कितना आसान साधन है?’

बापूके महान् अनुयायी डॉ० राजेन्द्र प्रसाद भी राम-
नामरस के एक सच्चे भ्रमर थे । वे बड़ी ही मस्ती के साथ
रामनाम के मकरन्द का पान करते । उन्होंने १ जनवरी,
१९६० को पटना जिले के फतुहा नामक स्थान में रामनाम
की महत्ता गाते हुए अपने भाषण में कहा था :—‘मुझे रामनाम
में अद्भुत शक्ति दीखती है । मन के सारे विकारों को नष्ट
करने की शक्ति इसमें सदा निहित रहती है । रामनाम लेने
वाले अवश्य ही भाग्यशाली हैं ।’

रामनामानुरागी सन्त सुन्दरदासजीने रामनामके प्रसंग
में बहुत ही सुन्दर लिखा है—

‘रामनाम मिश्री पिये, दूर जाहिं सब रोग ।

‘सुन्दर’ औषध कटुक सब, जप तप साधन योग ॥’

सुन्दरदासजी कहते हैं कि भवरोगों को मिटाने के लिए
जप तप योग आदि कड़वी दवा हैं । इन दवाओं से करोड़ों
गुणा अधिक प्रभावपूर्ण और अत्यन्त मधुर दवा रामनाम
मिश्री की तरह है ।

रामनाम को सर्वोपरि औषधि बताते हुए महात्मा
कबीरदासजी कहते हैं :—

‘सभी रसायन हम करी, नहीं रामनाम सम कोय ।

रंचक घट में संचरे, सब तन कंचन होय ॥

रामनाम निज औषधि काटे कोटि विकार ।

विषम व्याधि भी उबरै, काया कंचन सार ॥’

महात्मा कबीरदासजीने रामनाम को ‘निज औषधि’
कहा है अर्थात् यह औषधि अपने पास है । कहीं से लेना

(१७०)

नहीं है, किसी पर आश्रित होना नहीं है। मनुष्य जब चाहे तब रामनाम औषधि का प्रयोग कर सकता है। तुलसीदासजी ने इसी विचार को 'रामनाम निज नाव रे' कहकर व्यक्त किया है। इसका आशय यही है कि रामनाम पर सबको समान अधिकार प्राप्त है।

सचमुच में वही समय धन्य है जब मुख से रामनाम निकलता है। रामनाम के बिना जो समय व्यतीत होता है, वह विषपूर्ण ही समझने योग्य है। किसी सन्तने ठीक ही लिखा है :—

**‘सोई घड़ी सुलझणी, जब मुख निकसत राम ।
और घड़ी सब विषभरी, आवै कौने काम ॥’**

महात्मा कबीर भी यही बात कहते हैं—

**‘कबीरा कहता जात है, सुनता है सब कोय ।
राम कहे भल होएगा, नहि तो भला न होय ॥’**

महात्मा कबीरदासजी की यह दिव्य कामना है कि 'मैं अपनी देह को जलाकर उसकी स्याही बनाऊँ और अपनी हड्डी की कलम बनाऊँ। इस कलम से रामनाम लिखकर भगवान् रामके पास भेजूँ। देखिए :—

**‘यह तन जारौं मसि करौं, लिखौं राम का नाउँ ।
लेखनि करौं करं क की, लिखि सिखि राम पठाउँ ॥’**

रामकी राह देखते-देखते कबीर की आँखोंमें झाँई पड़ गई और रामनाम रटते-रटते जीभमें फफोले पड़ गये। देखिए :—

‘आँखड़ियाँ भाँई’ पढ़ी, पंथ निहारि-निहारि ।

जीमड़ियाँ छाला पढ़ी राम पुकारि-पुकारि ।’

फिर क्या हुआ ? रामनाम के जप से कबीर का मन ऐसा निर्विकार, विशुद्ध और पवित्र हो गया जैसा गंगाजी का जल पवित्र होता है। फिर भगवान् ही ‘कबीर कबीर’ पुकारते हुए कबीरके पीछे-पीछे चलने लगे। देखिए :—

‘मन ऐसा निर्मल भया जैसा गंगा-नीर ।

पाछे पाछे हरि फिरँ कहत कबीर-कबीर ॥’

सच्ची बात तो यह है कि जिसका आधार रामनाम है, वही सच्चा सुखी है और नहीं तो सारा का सारा संसार दुःख में ही है। नानकजीने ठीक ही कहा है :—

‘नानक दुखिया सब संसार ।

सो सुखिया जो रामनाम अघार ।’

गोस्वामी तुलसीदासजी भी विनयपद ६८ में कहते हैं—

‘राम राम राम जीह जौलों तू न जपि है ।

तौलों तू कहूँ जाय तिहूँ ताप तपि है ।’

तुलसीदासजी का हृदय ही रामनाम रस से ओतप्रोत है। उनका सम्पूर्ण साहित्य ही रामनाम की ही चर्चा है। ऐसा लगता है कि उनके रोम-रोम एक रामनाम की ही ध्वनि करते रहते हैं। रामनाम जैसा पतितपावन उन्हें दूसरा कुछ नहीं सूझता है। देखिए उनका हृदय रामनाम के प्रति कितना समर्पित है ? उनके हृदय की कितनी सबल

(१७२)

ध्वनि है कि रामनाम ही भवसागर का सेतु है, भूखे का माँ-
बाप है और निराधार का आधार है—

‘माय बाप भूखेको, आधार निराधार को ।

सेतु भवसागर को, हेतु सुख-सार को ॥

पतितपावन रामनाम सो न दूसरो ।’

रामनाम-साधना-जगत् के अनुपम महात्मा तुलसीदासजी ने जैसा सुयश रामनामका गाया है, वैसा रसपूर्ण वर्णन अन्यत्र दुर्लभ ही कहा जा सकता है। उन्होंने अपने जीवन में भलीभाँति अनुभव कर लिया था कि रामनाम ही सार है और शेष सब कुछ असार है। उस सन्त की यह अमरवाणी सदा गूँजती रहती है :—

‘रामनाम प्रेम-परमार्थ को सार रे ।

रामनाम तुलसी को जीवन-अधार रे ॥’

(विनयपद ६७)

कृष्णभक्त सुरदासजी रामनामरस से अधिक प्रभावित होकर रामनामयश गाने में ही अपने ‘जीवन को अधिक धन्य समझते थे। देखिए :—

‘जो तू रामनाम चित धरतौ ।

अबको जन्म आगिलौ तेरो दोउ जन्म सुधरतौ ॥’

कृष्णप्रेम में दीवानी मीरा को भी रामनामरस का पता लग गया और उसका मन राम राम रटने के लिए प्रेरित करने लगा। देखिए :—

‘मेरो मन रामहि राम रटो रे ।

रामनाम जप लिजै प्रानी, कोटिक पाप कटै रे ॥’

मृत्युकाल में अधम व्यक्ति के भी मुख से ‘रामनाम’ निकल जाय तो वह अवश्य ही मुक्त हो जाता है, देखिए :—

‘रामनाम मरत मुख आवा ।

अधमठ मुकुत होई श्रुति गावा ॥’

लंकायुद्ध में राक्षसगण रामराम कहकर देह त्याग करते थे, अतः वे सबके सब मुक्त हो गए । आभीर, यवन, किरात, खस आदि पापी एकबार ही ‘रामनाम’ कहकर पावन हो गए और मुक्त हो गए, देखिए—

**आभीर, यवन, किरात, खस स्वप्नादि अति अधरूप जे ।
कहि नाम बारक तेपि पावन होहि राम नमामि ते ॥’**

महामहोपाध्याय पं० श्रीगोपीनाथजी कविराजका भी यही दिव्य सन्देश है कि कलियुग में एक साधन रामनाम का गुणगान है । भगवान् विश्वनाथ काशी में जीवको तारक मंत्र का उपदेश देकर मोक्ष प्रदान करते हैं । यह तारक मंत्र सिर्फ रामनाम ही है । भगवान् के अन्य नामों की भी महिमा कम नहीं है, लेकिन जीवों को मुक्ति देने वाला एक रामनाम के अलावा अन्य नाम नहीं बताये जाते हैं । यही कारण है कि भगवान् कृष्ण स्वयं अर्जुन को ‘आदि पुराण’ में रामनाम ही का जप करने का आदेश देते हैं । उन्होंने रामनाम को सर्वोपरि नाम घोषित किया है । विशेष पाठकजन आदि-पुराण में देखने की चेष्टा करें ।

जब महान् पुण्य का उदय होता है, तभी मनुष्य श्रीरामनामरूपी अभूतरसका स्वयं आस्वादनकर दूसरों को भी उसका स्वारस्य प्रदान करता है। सन्तों का कहना है कि कुकर्म करते-करते जिनका हृदय पत्थर के समान हो गया है और परमिन्दारत होने से सदा दूसरों पर आक्षेप करते-करते जो नास्तिक हो गए हैं, उनके हृदय को सुन्दर सुकोमल बनाने के लिए रामनाम से बढ़कर कोई दूसरा साधन नहीं है। रामनाम में पर्वत को हिलाने की शक्ति है। रामनाम के द्वारा मनुष्य उस दिव्य देश में पहुँच जाता है, जहाँ कोई तर्क द्वारा नहीं पहुँच सकता है। रामनामजापक के लिए कुछ भी असंभव नहीं है। रामनामकी अद्भुत दिव्य ध्वनि अविद्या की सकल ग्रन्थियों का नाश करती है। इस नाम की ध्वनि शरीर की सभी नाड़ियों तथा प्राणमय कोष को शुद्धकर मूलाधार चक्रमें सर्पवत् सुप्त कुण्डलिनी को जगाकर सहज ही भाव-बन्धाधि उत्पन्न कर देती है। इससे मन की तरंगों और वृत्तियों का नाश होता है और मन एकाग्र बन जाता है। रामनाम की महिमा तो अनन्त है ही, किन्तु नामाभास भी व्यर्थ नहीं जाता। यवन को 'हराम' कहने से ही मुक्ति मिल गई। अजामिलने अपने बेटे को नारायण कहा था, जिससे उसे परमगति की प्राप्ति हो गई। यह नामाभास की महिमा है।

बृहद् भागवतामृत के २।३।१६० के अनुसार सभी भगवन्नामों को समान आनन्ददायक और समान शक्तिवाला ही बताया गया है, लेकिन धर्मशास्त्रों और ऋषियों के अनुभव के आधार पर रामनाम सर्वोपरि बताया गया है। भले ही भगवान् के सभी नाम अभिन्न हैं, लेकिन जीवों को

(१७५)

परमगति देनेवाला तारक मन्त्र केवल रामनाम ही है ।
तुलसीदासजीने भी रामनाम को सर्वश्रेष्ठ कहा है । देखिए :-

यद्यपि प्रभु के नाम अनेका ।

श्रुति कह अधिक एक ते एका ॥

राम सकल नामन्ह ते अधिका ।

होउ नाथ अध खगगन बधिका ॥

राका रजनी भगति तव, रामनाम सोइ सोम ।

अपर नाम उड़गन बिमल बसहु भगत उर व्योम ॥'

इसलिए तुलसीदासजीने रामनाम जपने पर बहुत ही
जोर दिया है—

‘सब भरोस तजि जो भज रामहि ।

प्रेम समेत गाव गुन ग्रामहि ॥

सोइ भव तर कछु संसय नाही ।

नाम प्रताप प्रगट कलि माहीं ॥

कलियुग सम जुग आन नहीं, जौं नर कर विस्वास ।

गाइ राम गुनगम बिमल, भव तर बिनहिं प्रयास ॥

कलियुग जोग न जग्य न ग्याना ।

एक अधार रामगुन गाता ॥'

समर्थ रामदास स्वामीजी भी केवल रामनाम जपने पर
ही सर्वाधिक बल देते हैं :—

‘रामनाम केवल जपै, कर न कछु श्रम और ।

सदा सम्भालै राम तेहि, रचक प्रभु सब ठौर ।’

यूँ तो रामनाम की श्रेष्ठता का वर्णन सर्वत्र है। ब्रह्म संहिता में कहा गया है कि इस कलियुग में राम के नाम जपने के अलावा अन्य साधनों में अधिकार सामान्य मनुष्य को नहीं है, देखिए :—

**‘रामेति धर्णद्वयमादरेण सदा स्मरन मुक्तिमुपैति जन्तुः ।
कलौ युगे कल्मष मानसानां अन्यत्र खलु नाधिकारः ॥’**

निष्कर्ष यही है कि रामनाम जीवन का सार है। जितनी निष्ठा, उपासना आदि के द्वारा मनुष्य जिस भगवत् वत्त्व की प्राप्ति करता है, वह रामनाम की साधना से अनायास ही प्राप्त कर लेता है। वेद, पुराण आदि शास्त्रों का गूढ़ रहस्य यही है कि रामनाम की साधना ही सर्वस्व है। इसे कोई करके ही समझ सकता है। लेकिन रामनाम में ऐसा असाधारण विश्वास तथा निष्ठा मनुष्य में भगवत्कृपा के बिना नहीं आ सकता है। रामनाम में अखण्ड विश्वास कर लेना सब कुछ पा लेना है। उसके बाद कुछ भी पाना शेष नहीं रहता है। भक्ति सिद्धान्त का मूल आधार यही है।

श्री राम नाम महाराज की जय ।

राम नाम जपन क्यों छोड़ दिया ?
क्रोध न छोड़ा, झूठ न छोड़ा,
फिर राम भजन क्यों छोड़ दिया ?
जिहि सुमिरन से अति सुख पावै,
वह सुमिरन क्यों छोड़ दिया ?
सन्त एक भगवान भरोसे,
तन मन धन सब छोड़ दिया ॥

परिशिष्ट

—) संदर्भ ग्रन्थ सूची (—

१. आरु ग्रन्थ :-

१. श्रीमद्भागवत महापुराण २. श्रीहनुमन्नाटक
३. स्कंदपुराण ४. पद्मपुराण ५. विष्णुपुराण
६. नारदीयपुराण ७. शिवपुराण ८. गरुडपुराण
९. ब्रह्मवैवर्तपुराण १०. लिंगपुराण
११. श्रीमद्भगवद्गीता १२. श्रीरामचरितमानस
१३. श्रीमद्वाल्मीकिरामायण १४. अध्यात्मरामायण
१५. आदिरामायण ।

(२) सहायक ग्रंथों की सूची :-

- | | |
|-----------------------------|-------------------------|
| १ मानस दर्पण | —श्रीचन्द्रमौली शुक्ल |
| २ श्रीरामचरितमानस की भूमिका | —श्रीरामदास गौड़ |
| ३ तुलसी साहित्य रत्नाकर | —श्रीरामचन्द्र द्विवेदी |
| ४ तुलसी संदर्भ | —डॉ० माता प्रसाद गुप्त |
| ५ तुलसी के चार दल | —सद्गुरुचरण अवस्थी |
| ६ तुलसीचर्चा | —डॉ० रामदत्त भरद्वाज |
| ७ तुलसीका जीवन चरित्र | —कमल कुमारी |

(१७८)

- ८ तुलसी की जीवन-भूमि — आचार्य चन्द्रबली पांडेय
- ९ विश्वसाहित्य में रामचरित- — डॉ० राजबहादुर लंगोड़ा
मानस
- १० तुलसी साहित्य की भूमिका — डॉ० रामरतन भटनागर
- ११ तुलसी की समन्वय साधना — डॉ० राजेन्द्र सिंह
- १२ तुलसीदास का व्यक्तित्व और — श्रीहरिकृष्ण अवस्थी
विचार
- १३ मानस की रामकथा — डॉ० परशुराम चतुर्वेदी
- १४ तुलसीदास का मन्देश — डॉ० राजपति दीक्षित
- १५ तुलसी रसायन — डॉ० भगीरथ मिश्र
- १६ तुलसी साहित्य और सिद्धान्त — डॉ० यज्ञदत्त शर्मा
- १७ मानस में उक्ति सौष्ठव — डॉ० बलदेव प्रसाद मिश्र
- १८ मानस माधुरी ”
- १९ विनयपत्रिका और तुलसीदास — डॉ० नरदेव पाण्डेय
- २० तुलसी-दर्शन — डॉ० बलदेव प्रसाद मिश्र
- २१ रामकथा-उत्पत्ति एवं विकास — डॉ० कामिल बुल्के
- २२ वाल्मीकिरामायण और श्रीरामचरित-
मानस का तुलनात्मक अध्ययन — डॉ० विद्या मिश्र
- २३ तुलसीदर्शन मीमांसा — डॉ० उदयभानु सिंह
- २४ तुलसीदास पर पौराणिक प्रभाव
— डॉ० विजय बहादुर अवस्थी
- २५ श्रीरामचरितमानस का काव्यशास्त्रीय अध्ययन
— डॉ० राजकुमार पाण्डेय
- २६ वाल्मीकिरामायण और रामचरितमानस की
साहित्यिक दृष्टि — डॉ० रामप्रसाद अग्रवाल
- २७ तुलसीदास की कारियत्री प्रतिभा — डॉ० श्रीधर सिंह

- २८ तुलसीदास का सांताजिक दर्शन — डॉ० महेश प्र० चतुर्वेदी
 २९ तुलसी भारतीय संस्कृति — डॉ० रघुराजशरण शर्मा
 ३० श्रीरामचरित मानस की अन्तर्कथाओं
 का रहस्य — डॉ० वी० डी० पाण्डेय
 ३१ तुलसीदास के भक्त्यात्मक गीत — डॉ० वचनदेव कुमार
 ३२ तुलसीदास की जीवनी और विचारधारा
 — डॉ० राजाराम रस्तोगी
 ३३ भारतीयतत्त्व-चित्रण — डॉ० जगदीशचन्द्र जैन
 ३४ भक्तिरस बोधिनी — सन्त श्रीप्रियादास
 ३५ सन्त साहित्य — डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल
 ३६ साहित्य साधना की पृष्ठभूमि — डॉ० बृद्धिनाथ झा
 ३७ रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय — डा० भवानी प्रसाद सिंह
 ३८ भारत की आध्यात्मिक दृष्टि — डॉ० राधाकृष्णन
 ३९ सन्त साहित्य और साधना
 — डॉ० भवनेश्वरनाथ मिश्र माधव
 ४० रामभक्ति साहित्य में मधुर-उपासना ”
 ४१ हिन्दी साहित्य का अतीत — आचार्य विश्वनाथ प्र० मिश्र
 ४२ श्रीसमथ रामदासदासस्वामीजी की
 श्रीरामोपासना — कृष्णावाई
 ४२क श्रीभागवतामृत — श्री ईश्वरी प्रसाद गोयनका
 ४३ मानस-चिन्तन — श्रीरामकिंकर उपाध्याय
 ४४ प्रेमरस सिद्धान्त — जगद्गुरु श्रीकृपालुजी महाराज
 ४५ विवेक और साधना — सन्त श्रीकेदारनाथ
 ४६ प्रेम दर्शन — देवर्षिनारद
 ४७ भक्तिदर्शन — स्वामी भजनानन्दजी सरस्वती
 ४८ भक्तिभावना ”

(१८०)

- ४६ नाम संकीर्तन सुधा — स्वामी भजनानन्दजी सरस्वती
 ५० भजनामृत प्रवाह ”
 ५१ भक्तिरसामृत सिन्धु — श्रीरूप गोस्वामी
 ५२ भक्तिरसामृत सिन्धु विन्दु — श्रीविश्वनाथ चक्रवर्त्तिपाद
 ५३ श्रीभक्ति चिन्तामणि
 — आचार्य सुवालाल उपाध्याय 'शुकरतन'
 ५४ भक्तिसार समुच्चय — श्रीलोकानन्दाचार्यजी
 ५५ भक्ति सर्वस्व — स्वामी श्रीअखण्डानन्द सरस्वती
 ५६ भक्ति योग — स्वामी विवेकानन्द
 ५७ श्रीचैतन्य चरितामृत — श्रीकृष्णदास कविराज
 ५८ भारतीय सस्कृति और साधना--डॉ० गोपीनाथ कविराज
 ५९ दशरथनन्दन श्रीराम — श्रीराजगोपालाचारीजी
 ६० भक्ति रत्नावली - प० श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी
 ६१ श्रीमद्भागवत रहस्य श्रीडोंगरेजी महाराज
 ६२ ” — स्वामी श्रीअखण्डानन्द सरस्वती
 ६३ भागवत प्रसादी — श्रीरामचन्द्रजी डोंगरेजी महाराज
 ६४ हरि का मार्ग ”
 ६५ वचनामृत-विन्दु ”
 ६६ मंगलमय जीवन-मृत्यु ”
 ६७ रामायण ग्रन्थ ”
 ६८ भागवत ग्रन्थ ”
 ६९ बाल रामायण ”
 ७० तत्त्वार्थ रामायण ”
 ७१ भागवत-दर्शन — स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती
 ७२ श्रीमद्वाल्मीकि रामायणामृत ”
 ७३ गीता दर्शन ”

(१८१)

७४ भक्ति योग	—स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती
७५ मानव-जीवन	”
७६ नारदभक्ति-दर्शन	”
७७ हरिभक्ति-रसायन	”
७८ जीवन का कर्तव्य	--स्वामी रामसुखदासजी
७९ शरणागति-रहस्य	”
८० भगवान् ही अपना	”
८१ कल्याण का सुगम साधन	”
८२ जीवन का सत्य	”
८३ कल्याणकारी प्रवचन	”
८४ तात्त्विक प्रवचन	”
८५ भगवत्तत्त्व	”
८६ ”	—स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज
८७ भक्तिसुधा	”
८८ भागवत धर्म मीमांसा	—विनोबाजी
८९ भागवत धर्म सार	”
९० गुरुबोध-सार	”
९१ गीताप्रवचन	”
९२ प्रभुभक्ति	—श्री आनन्दस्वामी
९३ दासबोध	—श्रीसमर्थ स्वामीरामदासजी
९४ रामभक्ति भूषण	—आशुकवि शालिग्रामजी
९५ श्रीहरिकथा	—गौड़ीय मिशन के लोमि महाराजजी
९६ अवतार मीमांसा	--श्रीजीवनाचार्यजी
९७ जीवन दर्शन	—पण्डित मिहीलाल
९८ भक्त और भगवान्	—महात्मा आनन्दस्वामी
९९ प्रभुदर्शन	”

- १०० मानव जीवन गाथा — महात्मा आनन्दस्वामी
 १०१ उपनिषदों का सन्देश ”
 १०२ सुख-शांति का मार्ग -- श्रीहनुमान प्रसाद पोद्दार
 १०३ वाल्मीकि और तुलसी-साहित्यिक
 मूल्यांकन — डॉ० रामप्रकाश अग्रवाल
 १०४ रामनवरत्नसार संग्रह परमहंस रामचरणदासजी
 १०५ रत्नप्रभा — स्वामी रामवल्लभाशरणजी
 १०६ उपासनात्रयसिद्धान्त — परमहंस रामचरणदासजी
 १०७ रामनामयश विलास — श्रीसीतारामशरण
 रामरसरगमणिजी महाराज
 १०८ रामरूपविलास ”
 १०९ रामरसरंगविलास ”
 ११० रामझाँकी विलास ”
 १११ भारतीय संस्कृति और साधना ..
 — डॉ० श्रीगोपीनाथ कविराज
 ११२ साधनपथ — श्रीहनुमान प्रसाद पोद्दारजी
 ११३ श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर — श्रीरामानन्दाचार्यजी
 ११४ श्रीमद्वैष्णव सिद्धान्त-संग्रह — श्रीश्यामलाल हकीमजी
 ११५ जीव पुरुषार्थ ”
 ११६ जीवतत्त्व ”
 ११७ वाल्मीकिकृत रामकथा श्रीसूरजमल मोहता
 ११८ रामस्नेही सम्प्रदाय में — श्रीभगवद्दासजी महाराज
 रामोपासना
 ११९ धर्मोकी फुलवारी — श्रीकृष्णदत्त भट्ट
 १२० श्रीराम — श्रीरामदासजी महाराज
 १२१ अवतार-मीमांसा — श्रीजीवनाचार्यजी महाराज

- १२२ हिन्दू संस्कृति में -श्रीजयदयाल
अवतार तत्त्व गोयन्दकाजी
- १२३ श्रीरामकी भक्तवत्सलता-स्वामी भजनानन्दजी सरस्वती
- १२४ गुणार्णव श्रीराम -श्रीपुरुषोत्तमाचार्य रंगाचार्यजी
- १२५ रामकथा मानवताकी कथा है -श्रीअनिरुद्धाचार्य
- १२६ परमात्मा श्रीराम और हमारी साधना -पथिकजी
- १२७ धर्म के शाश्वत स्तम्भ श्रीराम श्रीकन्हैयालाल
माणेकलाल मुन्शी
- १२८ रामराज्य -श्रीविद्यानन्दजी महाराज
- १०६ रामचरित की उपयोगिता -प० श्रीमाधवाचार्य
- १३० पतितपावन राम -श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री
- १३१ रामदर्शन -श्रीप्राणकिशोरजी गोस्वामी
- १३२ भगवान् श्रीराम -पं० श्रीदीनानाथजी शर्मा
- १३३ वेद में रामावतार -डॉ० कृष्णदत्तजी भारद्वाज
- १३४ रामस्तु भगवान् स्वयम् -डा० बाबूराम द्विवेदी
- १३५ पुरुषोत्तम श्रीराम -स्वामी पुरुषोत्तमानन्द जी
- १३६ शुद्ध ब्रह्म परात्पर राम -श्रीभगवत प्रसादजी द्विवेदी
- १३७ भारतीय लोक मर्यादा के -श्रीरामनाथजी 'सुमन'
आदर्श श्रीराम
- १३८ उत्तररामचरित की शास्त्रीय -डॉ० सत्यनारायण
समीक्षा चौधरी

(३) पत्र एवं पत्रिकाओं की सूची :-

- | | |
|-------------|--------------------|
| १ भक्ति अंक | गीता प्रेस गोरखपुर |
| २ रामायणांक | " |
| ३ मानसांक | " |

४ भगवत्तत्त्वांक	गीता प्रेस गोरखपुर
५ श्रीरामांक	"
६ उपासनांक	"
७ कल्याण मासिक पत्रिका	"
८ नयापथ	काशी
९ नया साहित्य	"
१० नागरी प्रचारिणी	"
११ माधुरी	"
१२ मानस मयूख	"
१३ सरस्वती	आगरा
१४ साहित्य सन्देश	"
१५ ऋषि जीवन	वृन्दावन
१६ श्रीहरिनाम	"
१७ ईश्वर प्राप्ति	"
१८ तपोभूमि	मथुरा
१९ श्रीकृष्ण सन्देश	"
२० अखण्ड ज्योति	"



Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

लेखक की प्रकाशित पुस्तकें :-

श्री भगवन्नाम रहस्य

श्री भगवन्नाम के दिव्य गुणों का
अनुपम संग्रह

मूल्य—७ रुपये

भगवत्तत्त्व मीमांसा

भगवत्तत्त्व एवं भगवत् प्राप्ति विषयक
अनुपम संकलन

मूल्य—१६ रुपये

श्री गौरांग महाप्रभु

महाप्रभु विषयक अद्भुत संकलन

मूल्य—८ रुपये

अवतार-मीमांसा

भगवदवतार विषयक विश्लेषण

मूल्य—१५ रुपये

भगवान् श्रीराम

रामचरित तथा रामनाम की महिमा
[प्रस्तुत ग्रन्थ]

मूल्य—१६ रुपये



पुस्तक प्राप्ति स्थान :-

रामनन्दन प्रसाद चौरासिया
(श्रीसन्तजी)
मगध विश्वविद्यालय, गया

मगध शुभंकर प्रेस
रामसागर नई सड़क, गया
(बिहार)